ॐ

पञ्चरत्नावली

भाषा टीका सहित

पञ्चस्तवी

भाषा टीका सहित

टीका-लेखक
(प्रेम नाथ शास्त्री)

प्रकाशक :- **प्रेमनाथ शास्त्री**
विजयेश्वर-ज्योतिष-कार्यालय गोलगुजराल (जम्मू)

दो शब्द

काश्मीर के शैव दर्शन के आधार से भक्ति के आवेश में शाम्भवी अवस्था पर पहुँचे हुये, ब्रह्मनिष्ठ, योगी, छन्द व्याकरण अलङ्कारशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् किसी काश्मीरी पण्डित ने इस "पञ्चस्तवी" की रचना की है, पञ्चस्तवीकार ने इस सारगर्भित स्तुति में कहीं अपने नाम का संकेत नहीं दिया है, और अपने को माता की स्तुति का अनधिकारी जानकर कहा है :–**वाचस्पतिः प्रभृतयोपि जडी भवन्ति, तस्मात्-निसर्ग-जडिमा कतमोहं-अत्र**" हे माता! जहाँ बृहस्पति आदि आप का वर्णन करने में मूक हो जाते हैं वहाँ मेरी गिनती किस में है, यदि में यह स्तुति करता हूँ, यह मैं स्वयं नहीं करता हूँ आप के भक्ति का आवेश करवा रहा है, पञ्चस्तवीकार को यह पूर्ण विश्वास था यह स्तुति मैं नहीं करता हूँ अपितु मुझे निमित बनाकर माता स्वयं कर रही है, यही कारण है पञ्चस्तवी-कार ने इस स्तुति में अपने नाम का संकेत नहीं दिया है, परन्तु पञ्चस्तवी के स्वाध्याय से यह बात निश्चित हो जाती है पञ्चस्तवीकार काश्मीरी ब्राह्मण है और शारदा माता स्वयं ही इस की रचना करने वाली है, यही कारण है इस पञ्चस्तवी का नाम सुनते ही विशेषतया काश्मीरी-पण्डित की आध्यात्मिक तार हिलने लगती है, पञ्चस्तवी का श्लोक पढ़ते समय अथवा सुनते समय अर्थ का ज्ञान हो या न हो प्रायः हर काश्मीरी पण्डित की वाणी गदगद् हो जाती है, शरीर पुलकित हो जाता है आँखों में आँसुओं की धारायें बहने लगती हैं, और भक्ति के आवेश में झूमने लगता है।

बचपन से ही मुझे गुरुमहाराज की प्रेरणा से इस स्तुति के अर्थ तथा टीका लिखने की प्रबल इच्छा थी, यह गुरुमहाराज की प्रेरणा का ही प्रभाव है, कि मैं ने एक अल्पज्ञ होते हुये भी इस सारगर्भित स्तुति पर यह साधारण सा अर्थ लिखने का प्रयत्न किया है, पञ्चस्तवीकार के ही शब्दों में "सावद्यं निर्-अवद्यं-अस्तु यदि वा किं वानया चिन्तया" यह मेरा प्रयत्न दोष रहित है या दोष सहित "मैं ने यह अर्थ विद्वानों के लिये नहीं बल्कि माता के उन भक्तों के लिये जिन को पञ्चस्तवी के अर्थ का बिल्कुल ज्ञान नहीं है, लिखा है, यदि ऐसे माता के भक्तों को मेरे इस प्रयत्न से पञ्चस्तवी के

अर्थ समझने में कुछ सहायता मिले तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूंगा।

पञ्चस्तवी–"स्तव" का अर्थ है, "प्रशंसा" करना, इस स्तुति में पाँच विभागों में माता की स्तुति अथवा वर्णन किया गया है, - इसलिये "पञ्चस्तवी" नाम रखा गया है।

पञ्चस्तवी–(१) पहले विभाग का नाम है **लघुस्तव** (२) **चर्चस्तव** (३) **घटस्तव** (४) **अम्बस्तव** (५) **सकल जननी स्तव**।

लघुस्तव–पहले स्तव के अन्तिम श्लोक में पञ्चस्तवीकार ने अपने को माँ की स्तुति करने में अनधिकारी मानकर "लघुत्व" पद का प्रयोग किया है "लघुत्व" का अर्थ है "हल्का" "ओछापन" "तुच्छ" थोड़ा, इस स्तव में **लघुत्व** पद सारगर्भित है, इसी भावना से इस "स्तव" का नाम 'लघुस्तव' रखा है, अथवा पहले स्तव में सब स्तवों की अपेक्षा कम श्लोक होने के कारण "लघुस्तव" नाम रखा है।

चर्चस्तव–इस स्तव में पंचस्तवीकार ने भिन्न-भिन्न प्रकार से माँ की स्तुति प्रशंसा अथवा चर्चा की है। इसलिये इस स्तव का नाम "चर्चस्तव" है।

घटस्तव–दूसरे तथा तीसरे में विशेषतया साधक ने अष्टसिद्धियों का वर्णन किया हे, उपनिषदों में कहा है कि वह "संवित्" "आत्मा" घड़े में अष्टसिद्धियों के ढक्कन से ढका हुआ है, जो इन अष्टसिद्धियों में ने उलझकर अष्टसिद्धिरूपी ढक्कन को ठुकराता है, वही "संवित्" अथवा आत्मा को जान सकता है, "संवित्" घड़े में ही होने से इस स्तव का नाम "घट स्तव" है।

अम्बस्तव–इस स्तव में पञ्चस्तवीकार ने बार-बार "अम्ब" इस नाम से उस पराशक्ति को पुकारा है, इसलिये इस स्तव का नाम "अम्बस्तव" रखा गया है।

सकल जननी स्तव–पञ्चस्तवी का हर एक शब्द एक-एक मन्त्र है, पञ्चस्तवीकार ने इस स्तुति का आरम्भ 'ऐं' इस मन्त्र से किया है, पञ्चस्तवी के अन्तिम श्लोक की अन्तिम पंक्ति सम्पूर्ण रूप में मन्त्र है, जिस में माता को "सकल जननी" शब्द से पुकारा है।

इसलिये इस स्तुति का नाम 'सकल जननी स्तव" रखा है–पञ्चस्तवी का अन्तिम मन्त्र है :

सकलजननि! सात्वं पाहि मां-इत्य-वश्यम्

हे सकल जगत् की माता! मेरी अवश्य रक्षा कर।

ॐ

अथ लघुस्तवः-प्रथमः

श्रीत्रिपुर-सुन्दर्यै नमः

ऐन्द्र-स्येव शरासनस्य दधती, मध्ये ललाटं प्रभां
शौक्लीं कान्तिम्-अनुष्ण-गौर्-इव शिरस्या-तन्वती सर्वतः।
एषाऽसौ त्रिपुरा हृदि-द्युतिर्-इवो,-ष्णांशोः सदा-हःस्थिता
छिन्द्यात्-नः सहसा पदै-स्त्रिभिर्-अघं, ज्योति-र्मयी वाङ्-मयी(१)

अन्वय तथा शब्दार्थ

ऐन्द्रस्य=इन्द्र के, **शरासनस्य**=धनुष के, **इव**=जैसे, **ललाटं मध्ये**=ललाट के बीच में, **प्रभां**=शोभा को, **दधती**=धारण की हुई, **अनुष्ण-गोः**=चन्द्रमा की, **इव**-जैसी, **कान्तिं-निर्मल**-दीप्ति को, **शिरसि**-सिर में, **आतन्वती**=फैलाती हुई, **सर्वतः**=हर ओर से, **एषा-असौ**=यही वह, **त्रिपुरा**=तीन पुरों, जागृत स्वप्न सुषप्ति अवस्था में ठहरी हुई "संवित्" अथवा "विमर्शमयी शक्ति," **हृदि**=हृदय में, **उष्णांशोः**=सूर्य की, **द्युतिर्-इव**=दीप्ति जैसी, **सदाहःस्थिता**=सदा उदित, **ज्योतिर्मयी**=प्रकाशमयी, **वाङ्मयी**=विमर्शमयी, **नः**=हमारे, **अघं**=पापों को, **त्रिभिः पदैः**=श्लोक के तीन बीजाक्षरों से, **सहसा**=बिना किसी विलम्ब के, **छिन्द्यात्**=नाश करे।

अर्थः—प्रकाशमयी, विमर्शमयी वह त्रिपुराभगवती जो ललाट में इन्द्रधनुष की भांति शोभा को धारण की हुई है, सिर में हर ओर निर्मल दप्ति को फैलाती हुई स्थित है, जो हृदय में सूर्य के समान उज्ज्वल दीप्ति से हर समय प्रकाशित रहती है वही त्रिपुरा भगवती,

इसी श्लोक के तीन पादों में ठहरे हुये तीन बीजाक्षरों से हमारे पापों का बिना किसी विलम्ब के नाश करे।

टिप्पणी:–पंचस्तवीकार ने परमतत्त्व का साक्षात्कार करके ही अपने अनुभव के आधार पर ही इस "पञ्चस्तत्वी स्तोत्र" की रचना की है, जिस का संकेत पहले ही श्लोक में मिलता है। आरम्भ के ही श्लोक में, अपनी "इष्टदेवी" को त्रिपुरा नाम से पुकारा है वर्तमान काल में भी त्रिपुरा भगवती की उपासना काश्मीर केरल और गौडीय पद्धति में की जाती है। त्रिपुरा नाम को इस स्तोत्र में 18 बार लाया है–पहले स्तव के 16वें श्लोक में इस नाम की स्वयं ही व्यगख्या भी की है-साधक ने पहले ही श्लोक में अपने "इष्टमन्त्र" तथा अपने "साधनाक्रम" का वर्णन भी किया है, "गुरुमन्त्र" चूँकि गोपनीय होता हे, अत: अपने इष्टमंत्र **"ऐं" "क्लीं" "सौ:"** को इसी श्लोक के तीन पादों में गुप्तरूप में रखा है, जैसे **"एन्द्रस्येव--** में **"ऐं" "शौक्लीं"** में **"क्लीं" "एषासौ:" में "सौ:"** इस शरीर रूपी मन्दिर में उस विमर्शमयी माँ के मिलने अथवा साक्षात्कार के तीन केन्द्र हैं, "ललाट, सिर, हृदय" ललाट में **"ऐं"** सिर में **"क्लीं"** हृदय में **"सौ:"** बीजाक्षर का ध्यान किया है-जिसके फलस्वरूप साधक ने ललाट में इन्द्रधनुष का शीतल प्रकाश जैसा, सिर में अमृत को टपकाते हुये चन्द्रमा की ज्योत्सना की भांति, हृदय में सूर्य के उज्ज्वल तथा तीव्र प्रकाश वाली जैसी संवित् रूपा विमर्शमयी मां अथवा उस महती शक्ति का साक्षात् कार किया, जिस शक्ति को शैवदर्शन में संवित्, विमर्श, प्रकाश, चेतना, वेदान्त में "अहं" अथवा "आत्मा" नाम से पुकारते हैं।

या मात्रा त्रपुसी-लता-तनु-लसत् तन्तू-त्थिति-स्पर्धिनी
वाक् बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा, तां मन्महे ते वयम्।
शक्तिः कुण्डलिनी-ति विश्व-जनन, व्यापार-बद्धोद्यमा
ज्ञात्वे-त्थं न पुनः स्पृशन्ति जननी, गर्भेर्भकत्वं नराः(२)

अन्वय तथा शब्दार्थ

या=जो, **मात्रा-संवित्**=शक्ति, **त्रिपुसी**-लता=ग्यवथीर बेल के समान, **तनुः**=सूक्ष्म, **लसत्**=चमकती हुई, **तन्तु**=तार से, **उत्थिति**=उत्पन्न हुई (बेल के साथ), **स्पर्धिनी**=होड़ (बराबरी) करने वाली, **वाक्-बीजे, प्रथमे**=पहले, बीजा क्षर-मंत्र "ऐं" में, **तव**=तुम्हारे, **सदा स्थिता**=सदा ठहरी हुई अथवा सदा उदित, **तां**=उसको, ते **वयं**=वही हम आप के भक्त जन, **मन्महे**=मानते

हैं, **शक्तिः कुण्डलिनी-इति**=यही कुण्डलिनी शक्ति है, जो **विश्व-जनन-व्यापार-बद्धोद्यमा**=जगत् के उत्पन्न, पालन, संहार करने में निरन्तर लगी हुई है, **इत्थं-ज्ञात्वा**=ऐसा जानकर, **नराः**=मनुष्य, **जननी गर्भे**=माँ के गर्भ में **अर्भकत्वं**=बालक भाव को, **पुनः**=दूसरी बार, **न स्पृशन्ति**=स्पर्श नहीं करते हैं।

अर्थः—आप के बीजाक्षर मन्त्र **"ऐं"** में जो उत्कृष्ट शक्ति है, जो ग्यवथीर लता की उत्पन्न हुई चमकती हुई सूक्ष्म बेल के साथ होड़ करती है (यानी सूक्ष्मातिसूक्ष्म है)। जो वाणी के बीजमन्त्र **"ऐं"** में स्थित हैं—ऐसा हम आप के भक्त जन मानते हैं परन्तु कई भक्त उस उत्कृष्ट शक्ति को, जगत् को उत्पन्न पालन संहार करने वाले सर्वशक्तिमती कुण्डलिनी शक्ति जानते हैं, ऐसे भक्त माँ के गर्भ में बालकभाव को प्राप्त नहीं होते हैं यानी जन्ममरण के चक्र से छुटकारा पाते हैं।

टिप्पणीः—उस मात्रा (संवित्) का स्वरूप कैसा है जिसका वर्णन उपनिषदों में ऐसे मिलता है **"अणोरणीयान् महतो-महीयान्" "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते"** जो मात्रा (संवित्) "सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है महान् से भी महान् है" जिससे सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं जिससे जीवित रहते हैं, जो शक्ति हर एक प्राणी में कुण्डलिनी रूप में ठहरी है।

दृष्ट्वा संभ्रमकारि वस्तु सहसा, ऐ ऐ इति व्याहृतम्
येना-कूत-वशात्-अपीह वरदे!, बिन्दुं विना-प्यक्षरम्।
तस्यापि ध्रुवम्-एव देवि! तरसा, जाते तवानु-ग्रहे
वाचः-सूक्ति-सुधा-रस-द्रव-मुचो, निर्यान्ति वक्त्रा-म्बुजात् (3)

अन्वय तथा शब्दार्थ

वरदे! देवि!=हे अभीष्ट सुख देने वाली देवी! **येन**=जिसने, **इह**=इस संसार में, **संभ्रमकारि**=भयभीत करने वाला वस्तु-पदार्थ, **दृष्ट्वा**=देखकर,

आकूत-वशात्=विना सोचे समझे, **सहसा**=शीघ्रता से, **विन्दुं विनापि**=बिन्दु के बिना भी **"ऐ ऐ", इति**="ऐ ऐ" ऐसे, **व्याहृतम्**=उच्चारण किया हो, **तस्यापि**=उस को भी, **तवानुग्रहे-जाते**=आप की दया होने पर, **तरसा**=बिना किसी प्रयास के, **सूक्ति**=उत्तम अर्थ वाली, **सुधा=रस, द्रव-मुचः**=अमृतरस के प्रवाह से परिपूर्ण, **वाचः**=वाणियाँ, **ध्रुवं एव**=निश्चय से, **निर्यान्ति**=निकलती हैं।

अर्थः—हे अभीष्ट फल को देने वाली माँ! जिस मनुष्य ने इस संसार में कोई भयभीत करने वाला वस्तु देखकर बिना सोचे समझे शीघ्रता से बिना बिन्दु के भी **"ऐ ऐ"** ऐसा उच्चारण किया हो उस पर भी आप का अनुग्रह होने से, बिना किसी प्रयत्न के उसके मुख से अमृत-रस से परिपूर्ण वाक्य निकलते हैं, अर्थात् वह पण्डित अथवा कवि बनता है।

टिप्पणीः—इस श्लोक में "ऐं" बीजाक्षर का महत्त्व दिखाया है।

यत्-नित्ये! तव काम-राजम्-अपरं, मन्त्राक्षरं निष्कलम्
तत्-सार-स्वतम्-इति-वैति विरलः, कश्चित्-बुध-श्चेत्-भुवि।
आख्यानं प्रतिपर्व सत्यतपसा, यत्-कीर्तयन्तो द्विजाः
प्रारम्भे प्रणवास्पद-प्रणयितां, नीत्वो-उच्चरन्ति स्फुटम् (4)

अन्वय तथा शब्दार्थ

नित्ये!=हे संवित् रूपा माँ, **यत्**=जो, तव आप का, **काम राजम्**=सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला, **अपरं**=दूसरा (क्लीं बीजाक्षर), **निष्कलं**=क्ल् से रहित, अर्थात् **"ईं", मन्त्राक्षरं**=बीजाक्षर मन्त्र हैं, **कश्चित् विरलः**=कोई विरला, **बुधः**=विद्वान् ही, **इति**=ऐसे ही-**अवैति**=जानता है, **भुवि**=संसार में, **यत्**=जिस बीजाक्षर का, **द्विजाः**=ब्राह्मण, **सत्यसपसः**=सत्य तप ऋषि की,

आख्यानं=कथा का, **कीर्तयन्तः**=कीर्तन करते हुये, **प्रतिपर्व**=हर एक पर्व पर, **प्रारम्भे**=कथा के आरम्भ में, **प्रणवास्पद**=ॐ के स्थान पर, **प्रणयितां नीत्वा**=प्रेम से अपना कर, **स्फुटम्**=स्पष्ट रूप में, **उच्चरन्ति**=उच्चारण करते हैं।

अर्थः—हे भूत भविष्य वर्तमान में रहने वाली माँ जो आप का दूसरा **'क्लीं'** बीजाक्षर मन्त्र है, उसमें से **"क्"** **"ल्"** निकाल कर जो **"ईं"** शेष रहता है, यह सरस्वती का मन्त्र है, ऐसा कोई विरला बुद्धिमान् ही जानता है, ब्राह्मण लोग हर एक पर्व पर जब सत्यतप नाम ऋषि का कथा कीर्तन होता है, तो मंगल के रूप में कथा के आरम्भ में **"ॐ"** के स्थान पर **"ईं"** का उच्चारण करते हैं।

टिप्पणी—"ईं" सरस्वती का बीजाक्षर मन्त्र है 'क्लीं" लक्ष्मी का बीजाक्षर मन्त्र है, आगम शास्त्रों में "ॐ" का मंगल रूप में प्रयोग किया जाता है **"ॐकारश्चा-थशब्दश्च मांगलिकौ-उभौ** पञ्चस्तवी कार ने **"ईं"** बीजाक्षर को ॐ की पदवी देकर "ईं" बीजाक्षर का महत्त्व दिखाया है।

यत्-सद्यो वचसां प्रवृत्ति-करणे, दृष्ट-प्रभावं बुधैः
तार्ती-यीकम्-अहं नमामि मनसा, त्वत्-बीजम्-इन्दु-प्रभम्।
अस्त्वौर्वो-पि सरस्वतीम्-अनुगतो, जाड्याम्बु-विच्छित्तये
गौः शब्दो गिरि वर्तते सनियतं, योगं विना सिद्धिदः(5)

अन्वय तथा शब्दार्थ

यत्=जो **"सौः"** बीजाक्षर, **सद्यः**=तत्क्षणात्, **वचसां**=वाणियों के, **प्रवृत्ति करणे**=सरस तथा प्रभावशाली बनाने में, **अहं**=मैं, **तार्तीयीकम्**=तीसरे, **त्वत्**=तुम्हारे, **इन्दुप्रभावं**=चन्द्रमा जैसे शीतल, **बीजं**=बीजाक्षर को, **मनसा नमामि**=मन से नमस्कार करता हूँ, **सरस्वतीम्-अनुगतः**=सरस्वती का अनुकरण करने वाला "सौः" बीजाक्षर, **और्वः अपि**=वाडवाग्नि का अर्थ

रखने वाला भी, **वः**=आपके, **जाड्याम्बु**=जडतारूप, अथवा अज्ञान रूपी जल के, **विच्छित्तये**=नाश के लिये, अस्तु हो, **गौःशब्द**=गौः यह शब्द, **गिरि–वर्तते**=वाणी अथवा सरस्वती का वाचक हैं, **सनियतं**=निश्चयरूप से, **यो**=जो, **"गंविना"**=जो **"ग्"** अक्षर के बिना "यानि केवल **"औः"** बीजाक्षर ही, **सिद्धिदः**=सिद्धि देने वाला है, अथवा **योगं बिना**=योग के बिना ही, यह **"औः"** बीजाक्षर सिद्धि देने वाला है।

अर्थः—मैं तुम्हारे तीसरे चन्द्रमा जैसे शीतल "सौः" बीजाक्षर को मन से नमस्कार करता हूँ, जो "सौः" बीजाक्षर तत्क्षणात् वाणियों को मधुर तथा प्रभावशाली बनाता है, ऐसा इस मंत्र का प्रभाव बुद्धिमानों ने देखा है **"स्"** के बिना केवल **"औः"** बीजाक्षर मूर्खों की जड़ता के लिये **"वाडवाग्नि"** हैं, **"गौः"** शब्द का अर्थ है वाणी अथवा सरस्वती, **"गौः"** में से **"ग्"** निकाल कर केवल **"औः"** बीजाक्षर भी सिद्धि देने वाला है **"यो–गं विना"**, अथवा **योगं विना** (यह बीजाक्षर) योग के (साधना) के बिना ही केवल **"औः"** उच्चारण करने मात्र से ही सिद्धि देता है।

टिप्पणीः—वाडवाग्नि=समुद्र में रहने वाली अग्नि वाडवाग्नि कहलाती है। "औः" बीजाक्षर का उच्चारण करना ही मूर्खता रूपी जल के लिये वाडवाग्नि है जो भक्त केवल "औः" का ही उच्चारण करते हैं, सरस्वती की उस पर कृपा होती है।

एकैकं तव–देवि! बीजम्–अनघं सव्यञ्जना–व्यञ्जनं
कूटस्थं यदि वा पृथक् क्रमगतं, यद्वास्थितं व्युत्क्रमात्।
यं यं कामम्–अपेक्ष्य येनविधिना, केनापि वा–चिन्तितम्
जप्तं वा सफली करोति सहसा, तं तं समस्तं नृणाम् (6)

अन्वय शब्दार्थ

देवि!=हे देवी!, **तव**=आपका, **एकैकं**=हर एक, **अनघं**=दोष रहित, **बीजं**=बीजाक्षर, **सव्यञ्जन-अव्यञ्जनं**=व्यञ्जन सहित-व्यञ्जनरहित, **कूटस्थं**=विकार रहित, **यदि वा**=या, **पृथक् क्रम गतं**=अलग अलग क्रम में गया हुआ, **यद्-वा**=या, **स्थितं**=ठहरा हुआ, **व्युत्क्रमात्**=उल्टे क्रम में, **यं यं**=जिस जिस, **कामम्**=कामना की, **अपेक्ष्य**=इच्छा करके, **येन केनापि**=जिस किसी भी, **विधिना**=विधि से, **चिन्तितम्**=चिन्तन किया हुआ, **जप्तं वा**=या जप किया हुआ हो, **नृणां**=मनुष्यों के, **तं तं**=उन उन, **समस्तं**=सभी कामनाओं को, **सहसा**=झट पट, **सफली करोति**=सफल करता है।

अर्थः—हे देवि! आप के प्रत्येक बीजाक्षर **"ऐं क्लीं सौः"** का जो भक्त व्यञ्जन सहित, व्यञ्जन रहित कूटस्थ (बिना किसी विकार के) ज्यों के त्यों रूप में अलग अलग क्रम में अथवा उल्टे क्रम से आप के इन बीजाक्षर मन्त्रों का चिन्तन या जप जिस जिस कामना से जो भक्त करता है, उसकी वह वह कामना तत्क्षणात् पूरी होती है।

टिप्पणीः—व्यञ्जन सहित बीजमन्त्र=ऐम् क्लीम्-सौः व्यञ्जन रहित ऐ ई औ, कूटस्थ=ऐं क्लीं सौः अलग-अलग क्रम में-ऐम्, क्लईम्-स-औः उल्टे क्रम में "सौ क्लीं ऐं"।

वामे पुस्तक-धारिणीम्-अभयदां, साक्ष-स्त्रजं दक्षिणे
भक्तेभ्यो वर-दान-पेशल-करां, कर्पूर-कुन्दो-ज्ज्वलाम्।
उज्जृम्भा-म्बुज-पत्र-कान्त-नयन, स्निग्ध-प्रभालोकिनीं
ये-त्वाम्-अम्ब न-शीलयन्ति मनसा, तेषां कवित्वं कुतः(7)

अन्वय शब्दार्थ

अम्ब=हे माँ!, **वामे-पुस्तक-धारिर्णीं**=बायें के एक हाथ में पुस्तक धारण की हुई, दूसरे हाथ में, **अभयदां**=अभय-मुद्रा धारण की हुई, **दक्षिणे**=दायें के एक हाथ में, **साक्ष-स्रजं**=रुद्राक्षमाला, दूसरे हाथ में, **भक्तेभ्यः**=भक्तों के लिये, **वरदान**=वर देने के लिये, **पेशल-करां**=कोमल हाथ वाली, **कर्पूर**=कफूर, **कुन्द**=मोतिया फूल की भांति, **कान्त**=सुन्दर, **नयन**=नेत्रों की, **स्निग्धप्रभा**=प्रेम से भरी, अथवा अनुग्रह दृष्टि से, **आलोकिर्नीं**=देखने वाली, **ये**-जो त्वां=तुम्हारे इस रूप का, **मनसा**=मनसे, न **शीलयन्ति**=ध्यान नहीं करते हैं, **तेषां**=उनको, **कवित्वं**=ज्ञान की प्राप्ति, **कुतः**=कहाँ हो सकती है।

अर्थः—बायें तरफ के एक हाथ में पुस्तक, दूसरे हाथ में अभय मुद्रा, दायें तरफ के एक हाथ में रुद्राक्षमाला और दूसरे हाथ में, भक्तों के लिये वरदान मुद्रा वाली, कर्पूर तथा कुन्द (मोतिया फूल) जैसी सफेद तथा उज्ज्वल प्रकाशवाली, खिले हुये कमलपत्र जैसे स्नेहयुक्त (अनुग्रहीत) नेत्रों की दीप्ति से देखने वाली, ऐसे ही उस 'संवित्' स्वरूपा सरस्वती माता का जो ध्यान नहीं करते हैं, वे **विद्वान् अथवा ज्ञानवान् बन** नहीं सकते हैं।

टिप्पणीः—बायें हाथ में पुस्तक, तथा अभय मुद्रा से तात्पर्य है, विद्या वही सफल है, जो भेदभाव को समाप्त करे, जब कि भेदभाव न रहने पर ही मनुष्य निर्भय होता है **"भयं द्वितीयात्"** दायें हाथों में माला, और वरदान मुद्रा-से तात्पर्य है, माला अध्यात्म का संकेत है, आध्यात्मिकता होनी चाहिए, वरदान के लिये, उत्तमदान (ज्ञान दान) के लिये 'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः'।

ये त्वां पाण्डुर-पुण्डरीक-पटल, स्पष्टाभि-राम प्रभां
सिञ्चन्तीम्-अमृत-द्रवैर्-इव शिरो, ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम्।
अश्रान्तं विकट स्फुटा-क्षर-पदा, निर्याति वक्त्राम्बुजात्
तेषां भारति! भारती सुर-सरित्, कल्लोल-लोलार्मि-वत्(8)

अन्वय-शब्दार्थ

भारति!=हे सरस्वती माता, **ये**=जो भक्त, **त्वां**=तुम्हारे, **पाण्डुर**=सफेद, **पुण्डरीक**=कमल के, **पटल**=समूह की भांति, **स्पष्ट**=निर्मल, **अभिराम**=सुन्दर **प्रभां**=दीप्तिवाले, **शिरः**=सहस्र दल को, **अमृत=द्रवैः-इव**=अमृत के प्रवाहों से जैसे, **सिञ्चन्तीम्**=सीञ्चती हुई, **मूर्ध्नि**=ब्रह्मरन्ध्र में, **स्थितां**=ठहरी हुई का, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं, **तेषां**=उनके, **वक्त्राम्बुजात्**=मुख कमल से, **अश्रान्तं**=निरर्गल, **विकट**=गम्भीर, **स्फुटाक्षरा पदा**=स्पष्ट अक्षरों वाली, **भारती**=वाणी, **सुरसरित्**=आकाशगंगा की, **क्ल्लोल**=कलकल करती हुई, **लोल**=चंचल, **ऊर्मिवत्**=तरंगों की भांति, निर्याति=निकलती हैं।

अर्थः—हे सरस्वती माता तुम्हारे सफेद कमलों के समूह की भांति निर्मल दीप्तिवाले, सहस्रार में अमृत प्रवाह को सींचती हुई ऐसे ही आप के स्वरूप का ब्रह्मरन्ध्र में जो भक्त ध्यान करते हैं, उनके मुख कमल से गम्भीर स्पष्ट अक्षरों वाली वाणी आकाशगंगा की कलकल करती हुई चञ्चल तरंगों की भांति निरर्गल रूप में निकलती हैं। अर्थात् उन भक्तों को मधुर सार्थक प्रभावशाली निरर्गल बोलने की शक्ति आती है।

टिप्पणी:—मूर्ध्नि=ब्रह्मरन्ध्रे-"सहस्रदलम्-आख्यातं=ब्रह्मरन्ध्र" ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रदल कमल होता है (इसी सहस्रार) में साधक को शिवशक्ति के मिलन का साक्षात् कार होता है **"सहस्रकमले शक्तिः शिवेन सह मोदते"**

ये सिन्दूर-पराग-पुञ्ज-पिहितां, त्वत्-तेजसा द्याम्-इमाम्
उर्वीं चापि विलीन-यावक-रस, प्रस्तार-मग्नाम्-इव।
पश्यान्ति क्षणम्-ऽप्य-नन्य मनस-स्तेषाम्-अनङ्ग-ज्वर
क्लान्ता-स्त्रस्त-कुरङ्ग-शावक-दृशो, वश्या भवन्ति स्फुटम्(9)

अन्वय-शब्दार्थ

अनन्यमनसः=एकाग्रमन वाले, **ये**=जो भक्तजन, **सिन्दूर-पराग**=सिन्दूर की धूलि के, **पुञ्ज**=समूह से, **पिहितां**=ढकी हुई, **इमां द्यां**=इस आकाश को, **उर्वीं चापि**=पृथिवी को भी, **विलीन**=पिघले हुये, **यावक-रस**=लाक्षा रस के, **प्रस्तार**=प्रवाह में, **मग्नाम्-इव**=डूबी हुई, **त्वत्-तेजसा**=आपके ही तेज से अथवा लालवर्ण से व्याप्त, **क्षणमपि**=एक क्षण भी, **पश्यन्ति**=देखते है, **तेषाम्**=उनको, **अनंगज्वर**=कामदेव के सन्ताप से, क्लान्ताः=**दुःखित, त्रस्त**=भयभीत, **कुरंग**=हिरण के, **शावक**=बच्चों की जैसी, **दृशः**=नेत्रों वाली (चञ्चल) इन्द्रियाँ, **वश्याभवन्ति**=वश्य होती हैं, **स्फुटम्**=प्रत्यक्षरूप में।

अर्थः—जो भक्तजन एकाग्रमन से आकाश और पृथिवी को आप के अरुणवर्ण में व्याप्त अथवा ओतप्रोत एक क्षणमात्र भी देखते हैं। संसार के विषयों से दुःखित तथा भयभीत इन्द्रियाँ उसके वश्य में हो जाती है जैसा कठोपनिषद में कहा है।

टिप्पणीः—सर्वशक्तिमती माता ही विश्व का सृ रती है,—शक्ति का वर्ण लाल माना जाता है।

"यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा-तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः

अर्थः—जो विज्ञान वाला है, जिसका मन आत्मा से जुड़ा रहता है, उसकी इन्द्रियां वश में रहती है, जैसे अच्छे घोड़े सारथी के वश में रहते हैं।

"यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः "जिस भक्त को वह माँ अपनायेगी उसी की इन्द्रियाँ वश में होती हैं।

चञ्चत्-काञ्चन-कुण्डला-ङ्गद-धराम्-आबद्ध-काञ्ची-स्रजं
ये त्वां चेतसि तत्-गते-क्षणमपि, ध्यायन्ति कृत्वा स्थितिम्।
तेषां वेश्मसु विभ्रमात्-अहर्-अहः-स्फारी भवन्त्य-श्चिरं
माद्यत्-कुञ्जर-कर्ण-ताल-तरलाः, स्थैर्यं भजन्ते श्रियः(10)

अन्वय तथा शब्दार्थ

चञ्चत्=चमकते हुये, **कांचन**=सोने के, **कुण्डल**=बालियां, **अंगद**=बाजूबंद, **धराम्**=धारण की हुई, **आबद्ध**=बन्धी हुई, **काँची**=सोने की, **स्त्रजं**=तगड़ी वाली, **तत्गत्**=ऐसे ही स्वरूप को, **मनसि**=मन में, **ये**=जो, **क्षणम्**-अपि=क्षणमात्र भी, **स्थितिं कृत्वा**=मन की एकाग्रता से, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं, **तेषां वेश्मसु**=उन के घरों में, **अरहः**=सदा, **स्फारी-भवन्त्यः**=विकसित हुई, **माद्यत्**=मस्त, **कुंजर**=हाथी के, **कर्णताल**=कानों की जैसी, **तरलाः**=चञ्चल, **श्रियः**=लक्ष्मी (ऐश्वर्य के साधन) **विभ्रमात्**=बिना किसी विलम्ब के **स्थैयं भजन्ते**=टिकी रहती है, **चिर**=चिरकाल तक।

अर्थः—जो भक्त चमकते हुये स्वर्णकुण्डलों तथा बाजूबन्दों को धारण की हुई, बांधी हुई सोने की तगड़ी से युक्त, ऐसे ही माता के स्वरूप का क्षणमात्र भी ध्यान करते हैं, उन के घरों में मदमस्त हाथी के कानों जैसी चञ्चल लक्ष्मी (ऐश्वर्य) के साधन बिना किसी विलम्ब के चिरकाल तक टिके रहते हैं।

टिप्पणीः—"या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः" दुर्गासप्त०।
जिस गृहस्थी पर माँ का अनुग्रह होता है, उस गृहस्थ में वह माँ लक्ष्मी के रूप में चिरकाल तक स्थाई रूप में ठहरती है।

आर्भट्या शशि-खण्ड-मण्डित-जटा, जूटां नृमुण्ड-स्त्रजं
बन्धूक-प्रसवा-रुणाम्बर-धरां, प्रेतासना-ध्यासिनीम्।
त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनाम्-आपीन-तुंग-स्तनीं
मध्ये निम्नवलि-त्रयाङ्कित तनुं-त्वत्-रूप संवित्तये। (11)

अन्वय-शब्दार्थ

आर्भट्या=अर्धगोलाकार, **शशिखण्ड**=चन्द्रकला से, **मण्डित**=सुशोभित,

जटा-जूटां=जटाओं की समूहवाली, **नृमुण्ड**=खोपड़ियों की, **स्त्रजं**=मालावाली, **बन्धूक**=बन्धूक वृक्ष के, **प्रसव**=फूलों के जैसे, **अम्बरधरां**=वस्त्रों वाली, **प्रेतासना**=शव के आसन पर, **अध्यासिनीम्**=बैठी हुई, **चतुर्भुजां**=चार भुजावाली, **त्रिनयनां**=तीन नेत्रों वाली, **आपीन**=मोटे, **तुंग**=ऊँचे, **स्तनीं**=स्तनों वाली, **मध्ये**=कमर में, **निम्न**=गहरे, **वलित्रय**=तीन रेखाओं से, **अंकित तनुं**=अंक्ति शरीरवाली, **त्वत्-रूप संवित्तये**=तुम्हारा स्वरूप जानने के लिये, **त्वां**=तुम्हारे ऐसे साकार रूप को भक्तजन, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं।

अर्थः—अर्धगोलाकार चन्द्रकला से सुशोभित जटा जूट वाली, खोपड़ियों की माला वाली, बन्धूक फूलों के जैसे लाल वस्त्र धारण की हुई प्रेत के आसन पर बैठी हुई, चारभुजा वाली, तीन नेत्रों वाली, मोटे तथा ऊँचे स्तनों वाली, कमर में सूक्ष्म तीन रेखाओं वाले, आपके स्वरूप को जानने के लिये भक्त जन आप के ऐसे ही साकार रूप का ध्यान करते हैं।

टिप्पणीः—खोपड़ियों की माला धारण करने से तात्पर्य है :—मनुष्य के सभी अंगों में से खोपड़ी का ही विशेष महत्त्व है, बुद्धि का निवास खोपड़ी में ही है, माता के साक्षात्कार का स्थान खोपड़ी ही है। **"सहस्त्र कमले शक्तिः शिवेन सह मोदते"** अतः मनुष्य की खोपड़ी को माता ने गले का हार बनाया है।

"प्रेतासन" से तात्पर्य है—हे मानव इस शरीर पर अभिमान मत कर, यह शरीर **प्रेत**=शव है, परन्तु शक्ति के अनुग्रह से ही यह शव (प्रेत) शिव बनता है, नर से नारायण बनता है। **चारभुजा** से तात्पर्य है—माँ! तुम्हारे भक्तों को चतुर्वर्ग प्राप्ति होती है। **चतुर्वर्ग**=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। **तीन नेत्र**=सूर्य-अग्नि और चन्द्रमा। **दो स्तनों** से तात्पर्य है-ज्ञान और क्रिया, कमर की **तीन वालियों** का संकेत है-भूलोक, भुवःलोक, स्वःलोक—सारांश यह है यह अखिल संसार माँ का ही विराट् रूप है।

जातोऽप्य-ल्प परिच्छदे क्षितिभुजां सामान्य-मात्रे कुले
निःशेषा-वनि-चक्र-वर्ति-पदवीं, लब्ध्वा प्रतापोन्नतः।
यत्-विद्याधर-वृन्द-वन्दित-पदः, श्रीवत्सराजो-ऽभवत्
देवि!-त्वत्-चरणा-म्बुज-प्रणतिजः, सोयं प्रसादो-दयः(12)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि! हे सर्वशक्तिमती माँ, **क्षितिभुजां**=क्षत्रियों के **सामान्य मात्रे-कुले**=साधारण वंश में, **अल्पपरिच्छदे**=छोटे घराने में, **जातः**=उत्पन्न हुआ, **अपि**=भी, **श्रीवत्सराजः**=श्रीवत्सराज नाम का राजा, **यत्**=जो, **निशेष**=सारी, **अवनि**=पृथिवी की, **चक्रवर्ति-पदवीं**=चक्रवर्तिपदवी, **लब्ध्वा**=प्राप्त करके, **प्रताप-उन्नतः**=प्रताप से उन्नत हुआ, **विद्याधर-वृन्द**=विद्याधरों के समूह से, **वन्दित पदः**=पूजे हुये चरणों वाला, **भवत्**=हुआ, **सोयं प्रसादोदयः**=वह यह प्रसाद का उदय जो उसे हुआ, **त्वत्**=तुम्हारे, **चरणाम्बुज**=चरण कमलों के, **प्रणतिजः**=प्रणाम से उत्पन्न हुआ था।

अर्थः—क्षत्रियों के सामान्य कुल तथा घराने में श्रीवत्सराजा उत्पन्न हुआ था, वह सारी पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा बना, यहाँ तक कि विद्याधर भी उनके चरणों को पूजते थे, हे देवी! उसका यह सारा उदय आप के चरणों के प्रणाम से हुआ था।

टिप्पणीः—यद्यपि प्रारब्ध कर्म को कोई टाल नहीं सकता है, परन्तु माँ आप के अनुग्रह से "लुम्पन्ति दैवलिखि-तानि दुरक्षराणि" राजा रंक बन सकता है, और रंक राजा बन सकता है।

चण्डि! त्वत्-चरणा-म्बुजा-र्चन-विधौ, बिल्वी-दलो-ल्लुण्ठन
त्रुट्यत्-कण्टक-कोटिभिः परिचयं, येषां न जग्मुः कराः।
ते दण्डांकुश-चक्र-चाप-कुलिश, श्रीवत्स-मत्स्यां-कितैः
जायन्ते पृथिवीभुजः कथम्-इवा-म्भोज-प्रभैः-पाणिभिः (13)

अन्वय-शब्दार्थ

चण्डि=हे माँ, **त्वत्-चरणा म्बुज**=तुम्हारे चरणकमलों के,

अर्चनविधौ=पूजाविधि में, **बिल्वीदल**=बिल्वपत्रों के, **लुण्ठन**=तोड़ने से, त्रुट्युत्=चुभे हुये, **कण्टक**=काँटों के, **कोटिभिः**=नोकों से **येषां कराः**=जिन के हाथों ने, परिचयं=**जानकारी**, न **जग्मुः**=न की हो, **ते**=वे, **दण्ड, अंकुश-चक्र, चाप** (धनुष) **कुलिश** (वज्र) **श्रीवत्स**=विष्णु की छाती पर बालू का घूँघर चिह्न, **मत्स्यांकितैः**=मच्छली आदि के निशानों से युक्त, **पाणिभिः**=हाथों वाले, **पृथ्वी भुजः**=चक्रवर्ती राजा, **कथम्-इव**=किस प्रकार बन सकते हैं।

अर्थः—हे चण्डी भगवती! जिन भक्तों के हाथों को आप के पूजा के लिये फूल तोड़ने से काँटों के नोकों से परिचय न हुआ हो, अर्थात् आप के लिये फूल चुनते समय काँटों के चुभने के कष्ट को जिन हाथों ने अनुभव न किया हो, वे दण्ड, अंकुश, चक्र, धनुष, वज्र, श्रीवत्स, मत्स्य के निशानों से युक्त हाथों वाले, चक्रवर्ती राजा बन नहीं सकते हैं।

टिप्पणीः—चण्ड्यते=प्रकाशयते **चराचरं जगत्**=सा चण्डी (जो शक्ति चराचर जगत् को प्रकाशित करती है वह "चण्डी" कहलाती है।

यह कहावत प्रचलित है—आदमी की किस्मत अपने हाथ में होती है—मनुष्य जब जन्म लेता है, तो उसकी मुट्ठी बंद होती है, उसकी बंद मुट्ठी में केवल हाथ की रेखायें ही होती हैं, मुट्ठी बन्द होने का तात्पर्य है, जो कुछ भी मैंने जीवन में करना है वह इन मुट्ठी की रेखाओं में बन्द है, परन्तु मनुष्य जब मरता है तो मुट्ठी खुली रख कर जाता है, खुली मुट्ठी ले कर जाने से तात्पर्य है, जो कुछ मैं करने आया था वह मैं सम्पूर्ण कर चुका हूँ। मुट्ठी की रेखायें मानिये प्रारब्ध का प्रमाण पत्र है।

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तत्-इतरे क्षीराज्य मध्वासवैः
त्वां देवि! त्रिपुरे! परापरमयीं, संतर्प्य पूजाविधौ।
यां यां प्रार्थयते मनः स्थिर-धियां तेषां त एव ध्रुवं
तां तां सिद्धिं-अवाप्नुवन्ति तरसा, विघ्नैर्-अविघ्नी कृताः(14)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि! हे देवी, **त्रिपुरे**=हे त्रिपुरा भगवती, **विप्राः**=ब्राह्मण **क्षोणिभुजः**=क्षत्रिय, **विशः**=वैश्य, **तत्-इतरे**=शूद्र (क्रमशः), **क्षीर**=दूध, **आज्य**=घी, **मधु**=शहद, **आसवैः**=शराब से, **त्वां**=आप, **परा**=विश्वमयी, **अपरां**=विश्वतीर्णा देवी को, **पूजा विधौ**=पूजा में **संतर्प्य**=तृप्त करके, **तेषां**=उन, **स्थिरधियां**=स्थिर बुद्धिवालों का, **मनः**=मन, **यां यां**=जिस जिस, **सिद्धिं**=सिद्धि को, **प्रार्थयते**=चाहता है, **ते**=वे भक्तजन, **ध्रुवं**=निश्चय से, **विघ्नैः**=सब विघ्नों से, **अविघ्नी-कृताः**=निर्विघ्न होकर, **तां तां सिद्धिं**=उस उस सिद्धि को, **अवाप्नुवन्ति**=प्राप्त करते हैं।

अर्थः—हे देवी! हे त्रिपुरा भगवती! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आप विश्वमयी विश्वोत्तीर्णा देवी की पूजाविधि में क्रमशः दूध, घी, शहद, शराब का प्रयोग करके आप को तृप्त करके, उन आप में स्थिर बुद्धि वालों का मन जिस जिस सिद्धि के लिये प्रार्थना करता है, वह वह सिद्धि वे निश्चय से प्राप्त करते हैं।

टिप्पणीः—इस श्लोक से इस बात का संकेत मिलता है पञ्चस्तवीकार के समय में काश्मीर में ब्राह्मणों की किसी भी पूजा में वह शारिका की पूजा था, या ज्वाला की शिवाभगवती की पूजा थीं अथवा भद्रकाली की किसी भी पूजा में मांस का प्रयोग नहीं होता था, उसके पश्चात् ही काश्मीरी पण्डितों के खानपान तथा उनके पवित्र आहार में ह्रास होने लगा था।

शब्दानां जननी त्वम्-अत्र भुवने, वाक्-वादिनी-त्युच्यसे
त्वत्तः केशव-वासव-प्रभृतयो-प्याविर्-भवन्ति स्फुटम्।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे, ब्रह्मादय-स्ते-प्यमी
सा-त्वं काचित्-अचिन्त्य-रूप-महिमा-शक्तिः परा गीयसे।।15।।

अन्वय-शब्दार्थ

शब्दानां=शब्दों की, **जननी**=उत्पन्न करने वाली, **त्वम्**=तुम हो, **अत्रभुवने**=इस जगत् में, **वाक्-वादिनी**=वाणियों को उच्चारण करने वाली, **इति**=ऐसे ही, **उच्यसे**=कहलाती हो, **त्वत्तः**=तुम से, **केशव**=विष्णु **वासव**=इन्द्र, **प्रभृतयः**=आदि, **स्फुटम्**=प्रत्यक्षरूप से, **अवि-र्भवन्ति**=प्रकट होते हैं, ते-**अमी**=वही यह, **कल्पविरमे**=कल्प के अन्त में, **यत्र**=जिस तुम्हारे स्वरूप में, **लीयन्ते**=लय हो जाते हैं, **सा-त्वं**=वही तुम **काचित्**=कोई, **अचिन्त्य**=अनिर्वचनीय चिन्तन से अतीत, **महिमा**=महिमा वाली, **पराशक्तिः**=उत्कृष्ट शक्ति, **गीयसे**=गाई जाती है।

अर्थः—हे माता! इस संसार में शब्दों को उत्पन्न करने वाली आप हो, आप ही सरस्वती कहलाती हो, आप से ही विष्णु इन्द्र आदि प्रकट होते हैं, ये ब्रह्मा विष्णु रुद्र कल्प के अन्त में तुम्हारे ही स्वरूप में लय हो जाते हैं, वही आप कोई अचिन्त्य रूप-महिमावली पराशक्ति गाई जाती हो।

टिप्पणीः—उस पराशक्ति का स्वरूप कैसा है-के बारे में उपनिषद् कहती है "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"

देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां, शक्ति-त्रयं त्रिस्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करम्-अथो, त्रिब्रह्म-वर्णा-स्त्रयः
यत् किञ्चित् जगति त्रिधा नियमितं, वस्तु-त्रिवर्गात्मकं
तत्-सर्वं त्रिपुरेति नाम भगव-त्यन्वेति ते तत्त्वतः (16)

अन्वय-शब्दार्थ

भगवति! हे ऐश्वर्य देने वाली माता! **देवानां त्रितयं**=तीन देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, **हुतभुजां त्रयी**=तीन अग्नि गार्हस्थ्य, हवनीय, श्मशानीय, **शक्ति**

त्रयं=तीन शक्तियाँ इच्छा, ज्ञान, क्रिया, **त्रिस्वरा:**=अ, इ, उ अथवा उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, **त्रैलोक्यं**=भू:, भुव:, स्व:, **त्रिपुष्करम्**=(पुष्कर=जल) गंगा, यमुना, सरस्वती **त्रिब्रह्म**=तीन वेद, **त्रय: वर्णा:**=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, **जगति**=जगत् में, **यत् किञ्चित्**=जो कोई भी वस्तु, **त्रिवर्गात्मकं**=तीन वर्गों के रूप में, **नियमितं**=बंधा हुआ है, **तत् सर्वं**=वह सब, **तत्वत:**=वास्तवता से **"त्रिपुरा" इति**=त्रिपुरा इसी नाम का, **अन्वेति**=अनुसरण करता है।

अर्थ:—हे माता! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, तीन अग्नि, इच्छा, ज्ञान क्रिया तीन शक्तियाँ, अ इ उ तीन स्वर, भूर्भुव: स्व: तीन लोक गंगा यमुना सरस्वती तीन नदियां, ऋग्, यजु, साम, तीन वेद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीन वर्ण, जगत् में जो कोई भी वस्तु तीन वर्गों के रूप में बंधा हुआ है वह सब वास्तविकता से त्रिपुरा नाम का ही अनुसरण करता है।

टिप्पणी—जगत् अम्बा के सभी नामों में से पंचस्तवीकार को त्रिपुरा नाम अधिक प्रिय रहा है, जब कि उन्होंने बार बार पंचस्तवी में माँ को त्रिपुरा नाम से पुकारा है, ऐसा करने पर भी पंचस्तवीकार को तृप्ति नहीं मिली है, अत: इस श्लोक में सम्पूर्णतया इस नाम की व्याख्या की है। पंचस्तवीकार को काश्मीरी पण्डित होने के नाते से इष्टदेवी त्रिपुरा भगवती ही थी ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

त्रिब्रह्म=तीन वेद।। वेदाश्चत्वरा:=वेद चार हैं? चार वेद होते हुये भी तीन वेद कैसे?

उत्तर:—ऋक्-यजु-साम, इन तीनों वेदों की चुन चुन कर कुछ सार गर्भित ऋचायें एक ही वेद में एकत्रित है—जो अथर्ववेद कहलाता है, इसलिये वेद तीन ही है-"इति वेदा: त्रयस्त्रयी"।

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणभुवि, क्षेमं-करीम्-अध्वनि
क्रव्याद-द्विप-सर्प-भाजि शवरीं, कान्तार-दुर्गे गिरौ।
भूत-प्रेत-पिशाच-जम्बुक-भये, स्मृत्वा महा-भैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपद-स्तारां च तोय-प्लवे (17)

अन्वय-शब्दार्थ

राजकुले=राजकुल में, **लक्ष्मीं**=लक्ष्मी रूप का, **रणभुवि**=युद्ध क्षेत्र में, **जयां**=जया रूप का, **क्रव्याद**=शेर, **द्विप** हाथी, **सर्पभाजि**=सांपों से भरे हुये, **अध्वनि**=मार्ग में, **क्षेमंकरीं**=कल्यण कारिणी का, **कान्तार**=कठिन, **दुर्गे**=दुर्गम्य, **गिरौ**=पहाड़ पर, **शवरीं**=शिकारिन रूप का, **भूत-प्रेत-पिशाच**=भूत प्रेत और पिशाच, **जम्बुकभये**=गीदड़ों के भय में, **महा-भैरवीं**=महाभैरवी रूप का, **व्यामोहे**=बड़े मोह में, **त्रिपुरां**=त्रिपुरा रूप का, **तोयप्लवे**=जल के बाढ़ में, **तारां**=तारारूप का, **स्मृत्वा**=स्मरण करके, **विपदः**=विपदाओं को, **तरन्ति**=पार करते हैं।

अर्थ—राजकुल में लक्ष्मीरूप का, युद्धक्षेत्र में जयारूप का, शेर हाथी सर्पों से भरे हुये मार्ग में कल्याण कारिणी का, कठिन दुर्गम्य पहाड़ पर शिकारिन रूप पार्वती का, भूतप्रेत पिशाच तथा गीदड़ों के भय में महा भैरवी रूप का, बड़े मोह में त्रिपुरा का, जल के बाढ़ में तारारूप माता का स्मरण करके सभी विपदाओं को भक्तजन पार करते हैं।

टिप्पणी—यो यो यां यां तनुं भक्तः, श्रद्धयार्चितुमिच्छति तस्य तस्याचलां श्रद्धां, ताम्-एव-विदधाम्यहम्। भगवद्गीता।

अर्थः—जो जो भक्त जिस जिस देवता या देवी के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस उस भक्त की, मैं उसी देवी अथवा देवता के प्रति श्रद्धा को स्थिर करता हूँ और सभी कामनायें पूरा करता हूँ।

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती, काली कला मालिनी
मातंगी विजया जया भगवती, देवी शिवा शाम्भवी।
शक्तिः शंकर-वल्लभा त्रिनयना, वाक्-वादिनी-भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी, माता कुमारी-त्यसि (18)

अन्वय-शब्दार्थ

माया=माति विश्वं (चराचर सृष्टि को बनाने वाली अथवा अघटित-घटन-पटीयसी), **कुण्डलिनी**=मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी स्वरूपा शक्ति, **क्रिया**=क्रिया शक्ति, **मधुमती**=आनन्दशक्ति, **काली**="**प्रलयकाले कलयति सर्वमिति काली,**" **कला**=अमृतमयी कला, **मालिनी**=वर्णमाला, **मातंगी**=मतंग ऋषि की कन्या, **विजया और जया**=सर्वो त्कृष्ट शक्तिरूपा, **भगवती**=षडैश्वर्यमयी, **देवी**=द्योतनशीला, **शिवा**=शंकरशक्ति, **शाम्भवी**=शम्भु की शक्ति, **शंकर वल्लभा**=शंकर की प्रिया, **त्रिनयना**=तीन नेत्रों वाली, **वाक्-वादिनी** सरस्वती रूपा, **भैरवी**=भैरवी शक्ति, **ह्रींकारी**="ह्रीं" बीजाक्षर मन्त्र रूपा, **त्रिपुरा**=तीन अवस्थाओं की साक्षी रूपा, **परापरमयी**=विश्वमयी तथा विश्वतीर्ण रूपा, **माता**=मान्यते इति माता, जिसका मान आदर किया जाता है, **कुमारी**=कुत्सितं मारयति=अज्ञान का नाश करने वाली, इति ऐसे ही भिन्न-भिन्न अर्थों वाली नामों से तुम पुकारी जाती हो।

अर्थ—चराचर सृष्टि को बनाने वाली, कुण्डलिनी स्वरूपा शक्ति, क्रियाशक्ति आनन्दशक्ति, सब चरचर सृष्टि को केवल अपने में लय करने वाली अमृतमयी कला, वर्णमाला रूपा, मतंग ऋषि की कन्या, सर्वोत्कृष्टशक्तिरूपा, षडैश्वर्यमयी द्योतनशीला, शंकरशक्ति, शम्भु की शक्ति, शंकर की प्रिया, तीन नेत्रों वाली सरस्वती रूपा, भैरवी शक्ति, "ह्रीं" बीजाक्षर-मंत्ररूपा, तीन अवस्थाओं की साक्षी विश्वमयी तथा विष्वतीर्णरूपा जिसका मान किया जाता है (माता) अज्ञान का नाश करने वाली ऐसे ही भिन्न-भिन्न अर्थों वाली नामों से तुम पुकारी जाती हो।

टिप्पणी–"एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति" उस एक ही शक्ति को ही विद्वान् बहुत नामों से पुकारते हैं।

आई पल्लवितैः परस्पर-युतै-र्द्वित्रि-क्रमाद्यक्षरैः
काद्यैः क्षान्त-गतैः स्वरादिभिर्-अथो, क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः।
नामानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु-या, न्यत्यन्त-गुह्यानि ते
तेभ्यो भैरव-पत्नि विंशति-सहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः (19)

अन्वय-शब्दार्थ

"आ" "ई" पल्लवितैः="आ" और "ई" से विस्तार में आये हुये, अथवा विकसित हुये, **परस्पर-युतैः**=आपस में मिले हुये, **काद्यैः क्षान्तगतैः**="क" से लेकर "क्ष" तक गये हुये, **द्वित्रि-क्रमाद्यक्षरैः**=दो तीन क्रम के अक्षरों से युक्त, **स्वरादिभिः**=स्वरों वाले **क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः**="क" से लेकर "क्ष" तक स्वर सहित अक्षरों से युक्त **यानि**=जो, **अत्यन्तगुह्यनि**=बहुत ही रहस्यमय, **ते**=आप के नामानि=जो नाम हैं, **तेभ्यः**=उन, **विंशति सहस्रेभ्यः परेभ्यः**=20 हजार से अधिक नामों को, नमः=नमस्कार हो।

अर्थः–इस श्लोक में माता के 20 हजार से अधिक बीज मंत्रों का साधक ने संकेत दिया है, चूंकि मन्त्र रहस्यमय तथा गोपनीय होते हैं अतः साधक ने अन्त में उन मन्त्रों की व्याख्या न करके नमस्कार करने में ही अपने को कृतकृत्य माना है।

टिप्पणी–मननात् त्रायते इति मन्त्रः मनन करने से जो रक्षा करता है, वह मन्त्र कहलाता है। मन्त्र उच्चारण करते समय इस बात का स्मरण रखिये-श्रद्धा के अभाव में कोई भी मन्त्र सफल नहीं होता है। यद्यपि मन्त्रों की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं-परन्तु पहले श्रेणि के मन्त्रों की गणना उन्हीं मन्त्रों में हैं। जो श्रद्धा से युक्त हूँ।

बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिर्-इयं, कृत्वा मनस्तत्-गतं
भारत्या-स्त्रिपुरे-त्य-नन्य-मनसो, यत्राद्य-वृते स्फुटम्।
एक-द्वि-त्रिपद-कमेण-कथित-स्तत्पाद संख्या-क्षरैः
मन्त्रो-द्धार-विधिर्-विशेष-सहितः, सत्-संप्रदाया-न्वितः(20)

अन्वय शब्दार्थ

भारत्याः=सरस्वती की, **इयं स्तुतिः**=यह स्तुति, **बुधैः**=ज्ञान वानों को, **निपुनं मनः**=तीक्ष्ण अथवा तीव्रगामी मन, **तत् गतं कृत्वा**=उसी माँ में लगा कर, **अनन्य मनसः**=न और किसी में लगाये मन से, इसी दृढ़विश्वास से त्रिपुरा भगवती ही चराचरसृष्टि का कारण है–**बौद्धव्याः**=जानना चाहिए। **सत् संप्रदायान्वितः**=गुरुपरम्परा से आई हुई, विशेष सहितः=विशेषता सहित **मन्त्रोद्वार विधिः**=मन्त्र निकालने की बिधि, **यत्राद्यवृते**=इस स्तुति के पहले ही श्लोक में, **स्फुटम् कथितः**=स्पष्ट रूप से कही है, जो मन्त्र "**एक द्वि त्रिपद क्रमेण** (1) ऐं (2) क्लीं (3) सौः के क्रम से, **तत् पाद संख्याक्षरैः**=पहले श्लोक के तीन पादों मैं (1) ऐंद्रस्येव (2) शौ-क्लीं (3) एषासौः उन तीन शब्दों में (कथितः) साधक ने कहा है।

अर्थ–इस श्लोक का सम्बन्ध पहले श्लोक (एन्द्रस्येव) के साथ है, सरस्वती की इस स्तुति का ज्ञानवानों को मन की एकाग्रता से मनन करना चाहिये, इस जगत् का कारण वही संवित् शक्ति है ऐसा जानना चाहिये। पञ्चस्तवीकार ने इस स्तुति के पहले ही श्लोक में मन्त्र निकालने की विधि स्पष्ट रूप से कही है, जो मन्त्र के तीन पदों में 'ऐं क्लीं सौः' के क्रम से तीन पादों में "ऐन्द्रस्येव, शौक्लीं, एषासौः में गुप्त रूप में रखे हैं।

टिप्पणी–मनुष्य अक्षय शक्तियों का भण्डार है, उस शक्ति को जगाकर सत् कर्म में प्रेरित करने का मुख्य साधन मन्त्र है। मन्त्र एक ऐसा सूक्ष्म किन्तु महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जिसके द्वारा

स्थूल पर नियंत्रण किया जाता है, प्रकृति को वश में करने की अपूर्व शक्ति मन्त्र में विराजमान है।

सावद्यं निर्-अवद्यम्-अस्तु यदि वा, किं वा नया चिन्तया
नूनं स्तोत्रम्-इदं पठिष्यति नरो, यस्यास्ति भक्ति-स्त्वयि।
सञ्चिन्त्यापि लघुत्वम्-आत्मनि दूढं, संजायमानं हठात्
त्वत्-भक्त्या मुखरी कृतेन रचितं, यस्मात्-मयापि-स्फुटम्(21)

अन्वय शब्दार्थ

इदं स्तोत्रं=यह स्तोत्र, **सावद्यं**=दोष सहित, **यदि वा**=अथवा, **निरवद्यं**=दोषरहित, **अस्तु**=हो, **किंवा**=क्या लाभ है, **अनया**=इस, **चिन्तया**=चिन्ता से, **यस्य**=जिसको, **त्वयि**=तुझ में, **भक्तिः अस्ति**=भक्ति है, **नरः**=वह मनुष्य **नूनं**=अवश्य, **पठिष्यति**=पढेगा, **यस्मात्**=क्योंकि, **त्वत् भक्त्या**=तुम्हारी भक्ति से, **मुखरी-कृतेन**=वाचाल बने हुये, **मयापि**=मैंने भी, **आत्मनि**=अपने में, **दूढं**=दृढता से, **संजायमानं**=उत्पन्न हुये, **लघुत्वं**=अल्पभाव का, **संचिन्त्य**=विचार कर, **हठात्**=हठ से, **स्फुटम्**=स्पष्ट रूप से, **रचितं**=बनाया।

अर्थ—मेरा यह स्तोत्र दोष सहित है या निर्दोष, इस चिन्ता से क्या लाभ है। माँ! जिस को तुम्हारी भक्ति होगी, वह यह स्तोत्र अवश्य पढ़ेगा, क्योंकि मैंने अपनी लघुता का विचार करके भी इस स्तोत्र की रचना भक्ति के आवेश में ही की है, नहीं तो यह मेरी वाचालता है।

टिप्पणी—"सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई" (राम चरित मानस) पंचस्तवीकार ने इस स्तोत्र के अन्त में माँ के सामने स्तुति करने में अपने को अनधिकारी समझते हुये "लघुत्व" पद का प्रयोग किया है, सम्भव है इसी पद को सार्थक बनाने के निमित्त इस पहले स्तव का नाम "लघुस्तव" रखा है:

इति पञ्चस्तव्यां लघुस्तवः प्रथमः ॥

अथ चर्चस्तव:द्वितीय:

आनन्द-सुन्दर-पुरन्दर, मुक्त-माल्यं
मौ-लौ हठेन निहितं, महिषा-सुरस्य।
पादाम्बुजं भवतु मे, विजयाय मञ्जु
मञ्जीर-शिञ्जित-मनोहरम्-अम्बिकाया: (1)

अन्वय-शब्दार्थ

आनन्द-सुन्दर=ऐश्वर्य से सुशोभित, **पुरन्दर**=इन्द्र ने, **मुक्त**=अर्पण की हुई, **माल्यं**=माला वाला, **महिषासुरस्य**=महिषासुर के, **मौलौ**=सिर पर, **हठेन**=आग्रह से, **निहितं**=रखा हुआ, **मञ्जु**=सुन्दर, **मञ्जीर**=पायलों की, **शंजित**=झंकार से, **मनोहरम्**=भक्तों के मन को मोहित करने वाला, **अम्बिकाया:**=माँ का, **पादाम्बुजं**=चरण कमल **मे**=मेरे, **विजयाय**=विजय के लिये, **भवतु**=हो।

अर्थ—ऐश्वर्य से सुशोभित, इन्द्र से अर्पण की हुई माला वाला हठ से महिषासुर के सिर पर रखा हुआ, सुन्दर पायलों के झँकार से भक्तों के मन को मोहित करने वाला, जगत् अम्बा का चरण कमल मेरे विजय के लिये हो।

टिप्पणी—"अभिमानेन नश्यति जन:" मनुष्य के नाश का कारण है अभिमान, जो भगत माँ के सुन्दर चरण कमल को हृदय में स्थान देता है-वह चरण कमल हृदय में प्रवेश करते ही पहले उस भक्त के अभिमान रूपी महिषासुर का मर्दन करता है।

"अहं ममेत्येव, भवस्य बीजं" अहं=अभिमान, मम=मोह। यही दो "अहं" और "मोह" संसार के चक्र में पड़ने के बीज हैं।

सौन्दर्य-विभ्रम-भुवो भुवनाधि-पत्य
सम्पत्ति-कल्पतरव-स्त्रिपुरे! जयन्ति।
एते कवित्व-कुमुद-प्रकराव-बोध
पूर्णेन्दव-स्त्वयि जगत्-जननि प्रणामाः (2)

अन्वय-शब्दार्थ

जगत्-जननि=हे जगत् की माता, **त्रिपुरे**=तीनों अवस्थाओं, जागृत-स्वप्न=सुषप्ति की साक्षी (संवित्) रूपा, **सौन्दर्य विभ्रमभुवः**=सौन्दर्य के विकास को उत्पन्न करने वाले, **भुवनादिपत्य**=तीनों भुवनों के स्वामी भाव रूपी, **सम्पत्ति-कल्पतरवः**=सम्पत्ति प्राप्ति के लिये आप सम्पत्ति रूप कल्पवृक्ष हैं, **कवित्व कुमुद**=कविता के कुमुदकमलों के, **प्रकर**=समूह के, **अवबोध**=विकसित करने के लिये, **पूर्णेन्दवः**=परिपूर्ण चन्द्रमा हो, ऐसे ही **त्वयि**=तुम्हारे प्रति, **प्रणामाः**=भक्तों के प्रणाम, जयन्ति=जयशाली हैं।

अर्थ—हे जगत् माता, हे त्रिपुरा भगवती, आपके प्रति किये गये प्रणाम, सौन्दर्य देने वाले हैं, राज्य-सम्पत्ति के देने में कल्प वृक्ष के समान हैं, कविता रूपी कुमद कमलों को विकसित करने के लिये पूर्ण चन्द्रमा हैं। ऐसे ही आप के लिये किये गये भक्तों के प्रणामों को जय जय कार हो।

टिप्पणी—कमल सूर्योदय होने पर खिलता है, अतः सूर्य को पद्मिणीपति कहते हैं। कुमद फूल चन्द्रमा के किरणों से खिलता है। अतः चन्द्रमा को "कुमुदबान्धव" कहते हैं।

देवि! स्तुति-व्यतिकरे कृतबुद्धयस्ते
वाचस्पति-प्रभृतयोपि जडी-भवन्ति।
तस्मात्-निसर्ग-जडिमा कतमो-हम्-अत्र
स्तोत्रं तव त्रिपुर-तापन-पत्नि! कर्तुम् (3)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि!=हे माता, **त्रिपुर=तापन-पत्नि**"त्रिपुरासुर को नाश करने वाली शंकर की पत्नी! **स्तुति-व्यतिकरे**=स्तुति करने के उद्योग में, **कृत बुद्धय:**=तीक्ष्णबुद्धि वाले, **वाचस्पति-प्रभृतय: अपि**=बृहस्पति आदि भी, **जड़ी भवन्ति**=मूक हो जाते हैं, तस्मात्=इसलिये, **निसर्गजडिमा**=स्वभाव से ही मूर्ख हूँ, **अत्र** इस संसार में, **तव स्तोत्रं कर्तुम्**=तुम्हारी स्तुति करने में, **कतम:-अहं**=मैं किस गिनती में हूँ।

अर्थ—हे माता! तुम्हारी स्तुति करने के उद्योग में तीक्ष्णबुद्धिवाले बृहस्पति आदि भी मूक हो जाते हैं, अत: आपकी स्तुति के करने में स्वभाव से ही मूर्ख मैं किस गिनती में हूँ।

टिप्पणी—त्रिपुर-तापन-पत्नी, त्रिपुर=तीन पुर, जागृत स्वप्न सुष्पति, तापन जलाने वाला, जिसकी ध्यान धारणा से तीनों अवस्थायें समाप्त होकर साधक तुरीयावस्था में पहुँचता है, अत: शंकर "त्रिपुरतापन" कहलाता है, उनकी पत्नी अथवा शक्ति त्रिपुरतापन पत्नी कहलाती है।

स्कन्द पुराणे-श्रुतिश्चभीता यं वक्ति, किं तस्मात् परमं-भवेत्
हे माता! वेद भी जिस का वर्णन करने में समर्थ नहीं तो औरों की बात ही क्या है।

माता तथापि भवतीं भव-तीब्र-ताप
विच्छित्तये स्तुति-महार्णव-कर्णधार:
स्तोतुं भवानि! स-भवत् चरणार-विन्द
भक्ति-ग्रह: किम्-अपि मां मुखरी करोति (4)

अन्वय-शब्दार्थ

माता! भवानि! हे माता **तथापि**=तो भी, **स्तुति-महार्णव कर्णधार:**=जो स्तुतिरूपी अथाह सागर है, उसका कर्णधार (मल्लाह) **स भवत्-चरणार-बिन्द-भक्ति ग्रह:**=वह आप के चरण कमल का भक्ति

का हठ, **भव-तीव्रताप-विच्छितये**=संसार के तीव्रताप के नाश के लिये, **भवतीं स्तोतुं**=आप की स्तुति करने के लिये, **मां**=मुझे, **मुखरी करोति**=वाचाल बनाता है।

अर्थ—हे माँ- जो आप का स्तुतिरूपी अथाह सागर है उसका कर्णधार जो आप के चरण कमल का भक्ति का हठ है, वह मुझे संसार के तीव्रताप के नाश के लिये आपकी स्तुति करने के लिये वाचाल बनाता है अथवा प्रेरित करता है।

टिप्पणी—मन्ये धनाभिजन-रूप-तपः श्रुतौजस्तेजः प्रभाव बल पौरुष बुद्धियोगः नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो, भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय–

अर्थः—नारायण अथवा नारायणी शक्ति को रिझाने का साधन, है भक्ति। (भागवत्)

सूते जगन्ति भवती, भवती बिभर्ति
जागर्ति तत्-क्षयकृते भवती भवानि।
मोहं भिनत्ति भवती भवती रुणद्धि
लीलायितं जयति चित्रम्-इदं भवत्याः (5)

अन्वय-शब्दार्थ

भवानि=हे जगत् की माता! **भवती**=आप, **जगन्ति**=जगतों की, **सूते**=सृष्टि करती हो, भवती=आप, **बिभर्ति**=जगतों का पालन करती हो, **भवती**=आप ही, **तत्-क्षयकृते**=जगतों के नाश के लिये, **जागर्ति**=जागती रहती हो, **भवती**=आप, **मोहं**=मोह का, **भिनत्ति**=नाश करती हो, **भवती**=आप ही, **रुणद्धि**=मोह से ढाँपती हो, **इदं**=यह, **चित्रं**=आश्चर्य वाली, **लीलायितं**=लीला क्रीडा **भवत्याः**=आप की, **जयति**=जयशील हो।

अर्थ—हे जगत् माता आप जगतों की सृष्टि पालन तथा संहार करती हो, आप ही मोह का नाश करती हो, आप ही संसार को मोह से ढाँपे रखते हो, आप की इस आश्चर्यमय लीला को जय जय कार हो।

टिप्पणी—उस संवित्-पारमेश्वरी शक्ति की पाँच लीलायें हैं—**सृष्टि स्थिति संहार, पिधान** और **अनुग्रह** जिन को पंचकृत्य कहते हैं। पांच तत्वों अथवा भुवनों का प्रकट होना **सृष्टि** कहलाती है, इन को नियम में रखना **स्थिति** कहलाती है, अपने ही में लय करना **संहार** कहलाता है, परमेश्वर का जीवरूप में प्रकट होकर अपनी परमेश्वरता का भूल जाना **पिधान** कहलाता है, फिर गुरु कृपा से अपने स्वरूप को पहचान लेना **अनुग्रह** कहलाता है, यही पंच कृत्य उस परमेश्वर अथवा उस "संवित्" की लीला है।

यस्मिन् मनाक्-अपि नवाम्बुज-पत्र गौरि!
गौरि! प्रसाद-मधुरां दृशम्-आदधासि।
तस्मिन्-निरन्तरम्-अनंग-शराव-कीर्ण
सीमन्तिनी नयन सन्ततयः पतन्ति (6)

अन्वय शब्दार्थ

नवाम्बुजपत्र-गौरि=खिले हुये कमल के पत्ते जैसे निर्मल, **गौरि**=हे गौर वर्णवाली! **यस्मिन्**=जिस पर, **मनाक्**-थोड़ी सी भी, **प्रसाद-मधुरां**=अनुग्रह से आनन्ददायक **दृशम्**=दृष्टि **आदधासि**=डालती हो, **तस्मिन्**=उस भक्त पर **निरन्तरम्**=लगातार, **अनंगशर**=कामदेव के बाणों से, **अवकीर्ण**=बिन्धी हुई, **सीमन्तिनी**=शक्तियों (अष्ट सिद्धियों की) **नयन सन्ततयः**=नेत्रों की पंक्तियाँ=**पतन्ति** लगी रहती हैं।

अर्थ—हे खिले हुये कमलपत्र जैसे गौरववर्ण वाली माँ! जिस भक्त पर आप अनुग्रह से आनन्ददायक दृष्टि डालती हों, कामदेव के बाणों से बिन्धी हुई सुन्दर शक्तियाँ अणिमादि सिद्धियाँ उनकी ओर लगातार देखती रहती है।

टिप्पणी— हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्-अपावृणु-सत्यधर्माय दृष्टये। उपनिषद्।
उस 'संवित्' परमशिव का मुख अष्टसिद्धियों से ढका हुआ है, भक्त इस मन्त्र में प्रार्थना करता है, आप के प्रत्यक्षदर्शन में बाधक उन सभी आवरणों को हटा दीजिये-हे माँ जिस

पर आप की अनुग्रह दृष्टि हो उस भक्त को ये सुन्दर स्त्रियाँ अथवा अष्टसिद्धियाँ कुछ बिगाड़ नहीं सकती हैं। बल्कि दूषण होने पर भी भूषण बनती हैं।

पृथ्वीभुजो-प्युदयन, प्रवरस्य तस्य
विद्याधर-प्रणति-चुम्बित-पाद-पीठः।
यच्चक्र-वर्ति-पदवी-प्रणयः स एष
त्वत्-पाद पंकजरजः, कणजः प्रसादः (7)

अन्वय शब्दार्थ

तस्य उदयन प्रवरस्य=उस उदयन नाम वाले, **पृथ्वी भुजः**=राजा का, **विद्याधर**=विद्याधरों के, **प्रणति**=प्रणामों के समय, **चुम्बित-पादपीठः**=चूमे हुये चरणों के आसन वाली, **यत्**=जो, **चक्र-वर्ति-पदवी प्रणयः**=चक्र-वर्ती राज्य की प्राप्ति हुई थी, **स एष**=वह इसी **त्वत्**=तुम्हारे, **पाद पंकजरजः**=चरण कमलों के, **रजः कणजः**=धूलि के कणों का, **प्रसादः**=अनुग्रह था।

अर्थ—उदयन नाम के राजा को, ऐसी चक्रवर्ती पदवी मिली, जिसके पादपीठ को विद्याधर प्रणाम करते समय चूमते थे, यह उस राजा को आप के चरण कमलों के धूलि के कणों का अनुग्रह था।

टिप्पणी—जगत्-गुरुशंकराचार्य माता के चरण कमलों के रजः कण का महत्त्व दिखाते हुये सौन्दर्य लहरी के दूसरे श्लोक में वर्णन करते हैं-

तनीयां-सं पांसुं, तव चरणपंके-रुहभवं,
विरिञ्चिः संचिन्वन्, विरचयति लोकान्-अविकलम्।
वहत्येनं शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसा
हरः संक्षुभ्यैनं भजति भसितोद्धूलन-विधिम्।

संक्षिप्त अर्थ—ब्रह्मा सभी भुवनों अथवा चराचर सृष्टि की रचना करके उस सृष्टि को बार बार उत्थल पुत्थल करता रहता है-इस का क्या कारण है? जगत् गुरु शंकराचार्य कहते हैं, वह ब्रह्मा चराचर सृष्टि में उस माँ के रजः कण को ढूंढ रहा है, जिस कारण से ब्रह्मा इस सृष्टि को उत्थल पुत्थल करने के लिये विवश होता है।

विष्णु भगवान् इस चराचर सृष्टि को शेषनाग के द्वारा सिर पर धारण करता है ऐसा क्यों? विष्णु भगवान् की यही भावना है, उस माँ का वह रज: कण पृथ्वी पर कहीं होगा ही मैं उस रज: कण की छत्रछाया में रह कर अपने को कृतकृत्य मानूँगा, भगवान् शंकर चराचरसृष्टि को भस्म बना कर वही भस्म अपने शरीर पर मलता है। वह भी इसी भावना से ऐसा करता है उस माँ का रज: कण उस भस्म में कहीं न कहीं अवश्य होगा ही यह भस्म मलने से उस रज: (धूलिकण) का स्पर्श मेरे शरीर से अवश्य होगा जिससे मैं अपने को धन्य मानूँगा।

कल्पद्रुम-प्रसव-कल्पित-चित्रपूजाम्
उद्दीपित-प्रियतमा-मदरक्त-गीतिम्।
नित्यं भवानि! भवतीम्-उपवीणयन्ति
विद्याधरा: कनक-शैल-गुहा-गृहेषु (8)

अन्वय शब्दार्थ

कल्पद्रुम=कल्पवृक्ष के, **प्रसव**=फूलों से, **कल्पित**=किये हुये, **चित्र**=अलौकिक, **पूजां**=पूजावाली, **उद्दीपित**=उज्ज्वलित, **प्रियतमा**=अत्यन्त प्रिय, **मदरक्त-गीतिं**=मस्त राग से भरे हुये गीतों को, **भवतीम्**=आप के, **कनक शैल**=सुमेरु पर्वत के, **गुहागृहेषु**=गुफारूपी घरों में, **विद्याधरा:**=विद्याधर देवता, **नित्यं**=नित्य **उपवीणयन्ति**=वीणाओं पर गाते हैं।

अर्थ:—हे भवानी! कल्पवृक्षों के फूलों से की हुई अलौकिक पूजावाली आप के उज्ज्वलित अत्यन्त प्रिय मस्ती के राग से भरे हुये गीतों को विद्याधर सुमेरु पर्वत की गुफाओं में वीणाओं पर नित्य गाते हैं।

टिप्पणी—विद्याधरा:=देवताओं की एक योनि है। विद्याधराप्सरोयक्ष:.........भूतोमी देवयोनय:।। संगीत कला मन की एकाग्रता का एक साधन है, अत: भगवद्गीता में "वेदानां सामवेदोस्मि" ऐसा कहा है। जब कि याज्ञवल्क्य कहते हैं—

वीणावादन तत्त्वज्ञ:, स्वरशास्त्रविशारद:
तालज्ञश्चाऽ प्रयासेन मोक्षमार्गं निगच्छति।

वीणावादन के तत्त्व का ज्ञाता, स्वरशास्त्र का ज्ञाता, ताल आदि को जानने वाला विद्वान् विना प्रयास के मोक्ष प्राप्त करता है। परन्तु वर्तमान युग में कई चलचित्रों के संगीत जो पश्चिमी रंग में रंगे हुये होते है चरित्र के ह्रास का कारण बनते हैं।

लक्ष्मी-वशी-करण-कर्मणि कामिनीनाम्
आकर्षण-व्यतिकरेषु च सिद्धमन्त्रः।
नीरन्ध्र-मोह-तिमिर-च्छिदुर-प्रदीपो
देवि! त्वत्-अंध्रि-जनितो जयति प्रसादः (9)

अन्वय शब्दार्थ

देवि! लक्ष्मी-वशीकरण कर्मणि=लक्ष्मी के वश करने के काम में, **कामिनीनाम्**=अष्टसिद्धियों के, **आकर्षण**=अपने तरफ खींचने के, **व्यतिकरेषु**=काम में **सिद्धमन्त्रः**=जो सफल अचूक मन्त्र है। **नीरन्ध्र**=घने, **मोहतिमिर**=मोहरूपी अन्धकार के, **च्छिदुर**=नाश के लिये, **प्रदीपः**=जो दीपक रूप है, **त्वत्-अंध्रि जनितः**=आप के चरण कमल से उत्पन्न हुआ, **प्रसादः**=जो अनुग्रह है वह, **जयति**=जयवाला हो।

अर्थ—हे माता, लक्ष्मी के वश करने के कर्म में तथा अष्ट सिद्धियों को अपने ओर खींचने में अथवा वश करने में जो सिद्धमन्त्र है, घने मोह रूपी अन्धकार के नाश के लिये जो दीपक रूप है, ऐसे ही तुम्हारे चरणकमल से उत्पन्न हुये अनुग्रह को जय जय कार हो।

टिप्पणी—अष्ट सिद्धिः—अणिमा महिमा गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्यं, ईशरत्वं, वश्यत्वम्।। **मोहः**—संसार के विषयों की अनुरक्ति मोह कहलाता है, वही अनुरक्ति जब ईश्वर की ओर हो तो **भक्ति** कहलाती है।

देवि! त्वत्-अंध्रि-नख-रत्न-भुवो मयूरवाः
प्रत्यग्र-मौक्तिक-रुचो मुदम्-उद्वहन्ति।
सेवा-नति-व्यतिकरे-सुर-सुन्दरीणां
सीमन्त-सीम्नि कुसुमस्तवकायितं यैः (10)

अन्वय शब्दार्थ

देवि=हे माता, **त्वत्**=तुम्हारे, **अंघ्रि**=चरणों के, **नख-रत्न-भुवः**=नाखुन रूपी रत्नों से, भुवः=उत्पन्न हुये, **मयूरवाः**=किरण, **प्रत्यग्र**=निर्मल, **मौक्तिक-रुचो**=मोतियों की शोभावाले, **मुदम्**-आनन्द को, **उद्वहन्ति**=धारण करती हैं, **यैः**=जिन किरणों ने, **सुरसुन्दरीणां**-देवस्त्रियों के, **सेवा-नति-व्यतिकरे**=सेवा तथा प्रणाम करने के काम में, **सीमन्त-सीम्नि**=मांग के स्थान पर **कुसुमस्तवकायितं**=फूलों के गुलदस्तों की छटा धारण की है।

अर्थ—हे देवी! आपके चरणों के नखरत्नों से उत्पन्न हुये किरण मोतियों की शोभावाले, आनन्द को धारण करते हैं, जिन किरणों ने देवस्त्रियों के सेवा तथा प्रणाम के लिये झुकने के समय मांग के स्थान पर फूलों के गुलदस्तों की छटा धारण की है।।

टिप्पणी—देवस्त्रियाँ अपना सुहाग तथा देवत्व बचाये रखने की भावना से आप के चरणकमलों में झुकती है, जबकि देवताओं को हर समय देवत्व से च्युत होने का भय बना रहता है- "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" भगवद्गीता

मूर्ध्नि स्फुरत्-तुहिन-दीधिति-दीप्ति-दीप्तं
मध्ये ललाटम्-अमरायुध-रश्मि चित्रम्।
हृत्-चक्र-चुम्बि-हुत-भुक्-कणि-कानुरूपं
ज्योतिर्यत्-एतत्-इदं अम्ब! तव स्वरूपम् (11)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब!=हे जगत् माता, **मूर्ध्नि**=सिर में, **यत्**=जो, **स्फुरत्**=चमकते हुये, **तुहिनदीधिति दीप्ति**=शीतल बर्फ जैसे किरणों के प्रकाश से, **दीप्तं**=चमकता हुआ (प्रकाश) **मध्ये ललाटं**=ललाट के मध्य में, **अमरायुधरश्मि**

चित्रं=इन्द्रधनुष के जैसा जो प्रकाश का पुंज है, **हृत्-चक्र-चुम्बि**=हृदय में स्थित, **हुतभुक्-कणिकानुरूपं**=अग्नि के अंगारकों के समान **ज्योतिर्यत्**=जो ज्योति प्रकाश है, **एतत् इदं**=वह यह, **तवस्वरूपं**=आप का ही स्वरूप है।

अर्थ–हे जगत् माता! सिर में जो चमकते हुये, चन्द्रमा के किरणों को चमकता हुआ प्रकाश है और ललाट के मध्य में इन्द्रधनुष का जैसा प्रकाश पुंज है, ऐसे ही हृदय में जो अग्नि के अंगारकों जैसा ज्योतिप्रकाश है, यह सभी आपका ही स्वरूप है।

टिप्पणी–इस श्लोक का सम्बन्ध पंचस्तवी के पहले श्लोक के साथ है–साधक ने उस संवित् का अपने शरीर रूपी मन्दिर में माँ का जिस रूप में जिस स्थान पर साक्षात्कार किया है उसकी फिर से पुष्टि इस श्लोक में की है।

रूपं तव स्फुरित-चन्द्र-मरीचि-गौरम्
आलोकते शिरसि वाक्-अधि-दैवतं यः।
निःसीम-सूक्ति-रचना-मृत-निर्भरस्य
तस्य प्रसाद-मधुराः प्रसरन्ति वाचः (12)

अन्वय-शब्दार्थ

यः=जो, **स्फुरित**=परिपूर्ण, **चन्द्र-मरीचि**=चन्द्रमा के किरणों जैसे, **गौरं**=गौरवर्ण वाले, **वाक्=अधि-दैवतं**=वाणी के अधिष्ठाता रूप, **तव रूपं**=आप के स्वरूप को, **शिरसि**=सहस्रार में, **आलोकते**=देखता है, **निःसीम**=सीमारहित, **सूक्ति**=सुन्दरवाणियों की **रचना**=रचना रूपी, **अमृत निर्भरस्य**=अमृत से परिपूर्ण, **तस्य**=उस भक्त से, **प्रसादमधुराः**=अनुग्रह से मधुर, **वाचः**=वाणियाँ, **प्रसारन्ति**=स्वतः सिद्ध ही निकलती हैं।

अर्थ–परिपूर्ण चन्द्रमा जैसे गौर वर्ण वाले तुम्हारे स्वरूप का जो भक्त सिर (सहस्रार) में स्मरण करता हैं, उस भक्त को सीमारहित सुन्दरवाणियों के रचनारूप अमृत से भरी हुई उस माँ के अनुग्रह

से उत्पन्न हुई मधुर-वाणियाँ बिना किसी प्रयत्न के स्वत: सिद्ध ही निकलती रहती हैं।

टिप्पणी–मूक होई वाचाल, पंगु चढइ गिरिवर-गहन,
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन। (रामचरितमानस)
अर्थ–जिनकी कृपा से गूँगा बहुत सुन्दर बोलने वाला हो जाता है और लंगड़ा लूला दुर्गम पहाड़ पर चढ़ जाता है।

सिन्दूर-पांसु-पटल-छुरिताम्-इव-द्यां
त्वत्-तेजसा जतुरस-स्नपिताम्-इवोर्वीम्
यः पश्यति क्षणमपि त्रिपुरे! विहाय
व्रीडां मृडानि! सुदृशस्तम्-अनु-द्रवन्ति (13)

अन्वय शब्दार्थ

त्रिपुरे!=हे जगत् माता, **यः**=जो भक्त, **सिन्दूर पांसु**=सिन्दूर के धूलि के **पटल**=समूह से, **छुरिताम् इव**=ढाँपा हुआ जैसा, **द्यां**=आकाश को, **त्वत्-तेजसा**=तुम्हारे लाल रंगवाले तेज से, **जतु-रस**=अलुत के लाल रस में, **स्नपिताम्-इव**=डूबी हुई जैसी, **उर्वीम्**=पृथ्वी को, **क्षणमपि**=एक क्षणमात्र भी, **पश्यति**=देखता है, **मुडानि**=हे माता! **सुदृशः**=सुन्दर अष्टसिद्धियाँ, **व्रीडां विहाय**=लज्जा छोड़कर, **तं**=उस भक्त के, **अनुद्रवन्ति**=पीछे दौड़ती हैं।

अर्थ–हे माता सिन्दूर के जैसे लाल धूलि से आकाश को ढाँपा हुआ ऐसे ही अलुत के लाल तरल पदार्थ में डूबी हुई पृथ्वी जिस भक्त को दिखाई देती है–यानी अखिल पृथ्वी उस माता के लाल स्वरूप से ओत प्रोत है, जो भक्त ऐसा अनुभव करता है उस भक्त के पीछे-पीछे अष्टसिद्धियाँ लुढकती फिरती हैं।

टिप्पणी–माता का स्वरूप रजोगुण प्रधान माना जाता है, अत: उसका रंग लाल माना गया है।

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल,

लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।गोपी।।

मातः-मुहूर्तम्-अपि-यः स्मरति स्वरूपं
लाक्षा-रस-प्रसर-तन्तुनिभं भवत्याः।
ध्यायन्त्य-नन्य-मनस्-स्तं-अनंग-तप्ताः
प्रद्युम्न-सीम्नि सुभगत्व-गुणं तरुण्यः (14)

अन्वय शब्दार्थ

मातः=हे माँ, **यः**=जो, **लाक्षा-रस-प्रसर**=लाक्षारस से निकली हुई, **तन्तुनिभं**=सूक्ष्मतार की भांति, **भवत्याः**=आपके, **स्वरूपं**=स्वरूप का, **मुहूर्तम्-अपि**=एक क्षण भी **अनन्यमनसः**=एकाग्रता से, **स्मरति**=स्मरण करता है, **अनङ्गतप्ताः**=कामदेव से पीड़ित, सुभगत्व-गुणं=उस सौभाग्य वाले भक्त का **तरुण्या**=सुन्दर तथा शक्तिशाली योगनियाँ, **प्रद्युम्नसीम्नि**=कामदेव के स्थान पर रख कर, **ध्यायन्ति**=ध्यान करती है (जैसे कामदेव से पीड़ित योगनियाँ काम देव के वश में हो जाती हैं, वैसे ही शक्तिशाली इन्द्रियाँ उस भक्त के वश्य में हो जाती हैं।

अर्थः–हे माँ! जो भक्त आप के लाक्षा रस के सूक्ष्म तार की भांति आप के अनिवर्चनीय स्वरूप का मुहूर्त मात्र भी स्मरण करते हैं। उस भक्त की शक्तिशाली इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।

टिप्पणी–"तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वः इव सारथेः।" उपनिषद्
जो भक्त माता के उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वरूप (जिसके बारे में उपनिषदों का कहना है "अणोरणीयान्-महतो महीयान्" का स्मरण करते हैं उस भक्त की इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं, वह भक्त इन्द्रियों के वश में नहीं रहता है।

योयं चकास्ति गगनार्णव-रत्नम्-इन्दुः
योयं सुरा-सुर-गुरु-पुरुषः पुराणः।
यत् वामम्-अर्धम्-अन्धक-सूदनस्य
देवि! त्वमेव तत्-इति प्रतिपादयन्ति (15)

अन्वय शब्दार्थ

योयं=जो यह, **गगनार्णव**=आकाशरूपी समुद्र का, **रत्नं**=रत्न, **इन्दुः**=चन्द्रमा है, **योयं**=जो यह, **सुरासुर**=देवताओं तथा राक्षसों का **पुरुषः पुराणः**=आदि पुरुष नारायण है, **यत्**=जो, **वामम् अर्धम्**=बायाँ अर्धभाग है, **अन्धकसूदनस्य**=कामदेव को मारने वाले का (शंकर का) **देवि**! हे माता **त्वमेव-तत्**=वह भी आप ही हो, **प्रतिपादयन्ति**=ऐसा विद्वान् सिद्ध कर हैं।

अर्थः—हे माता आकाशरूपी समुद्र का रत्नरूप चन्द्रमा आप ही हो, आप ही आदि पुरुष नारायण हो, शंकर का अर्धवाम भाग (पार्वती) आप ही हो ऐसा विद्वान् सिद्ध करते हैं।

टिप्पणी—यत् यत्-विभूति-मत्-सत्त्वं, श्रीमत्-ऊर्जितम्-एव वा
तत्-तत्-एवावगच्छत्वं मम तेजोंश संभवम्।। भगवद्गीता
अर्थ—जो जो विभूति युक्त-कान्तियुक्त-शक्तियुक्त वस्तु है, उसको तू मेरी नारायणी शक्ति से ही उत्पन्न हुआ जान।

इच्छानुरूपम्-अनुरूप-गुण-प्रकर्ष
संकर्षिणि! त्वम्-अनुसृत्य-यदा-बिभर्षि।
जायेत स त्रिभुव-नैक गुरु-स्तदानीं
देवः शिवोपि भुवन-त्रय-सूत्रधारः (16)

अन्वय शब्दार्थ

संकर्षणि!=हे शंकर को अपने ओर खींचने वाली माता! **इच्छानुरूपं अनुसृत्य**=अपनी स्वतन्त्रशक्ति के अनुसार, **अनुरूप-गुण प्रकर्षं,** उत्कृष्ट गुणों के उत्कर्ष को, **यदा बिभर्षि**=जब धारण करती हो, **स देवः शिवोऽपि**=वह देवता शिव भी, **तदानीं**=उसी समय **एकःगुरु**=अद्वितीय, **गुरु, भुवन त्रय-सूत्रधारः**=तीनों लोकों के सृजन पालन संहाररूपी नाटक का सूत्रधार बनता है।

अर्थः—हे भगवान् शंकर को भी वश में करने वाली माँ, जब आप, अपनी स्वतन्त्रशक्ति के अनुसार उत्कृष्ट गुणों के उत्कर्ष को धारण करती हो, तभी वह शिव भी तीनों भुवनों को गुरु बन कर तीन लोकों के सृजन पालन संहार रूपी नाटक का सूत्रधार बनता है।

टिप्पणी—अहं सर्वस्य प्रभवो मतः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भाव-समान्वताः।। भगवद्गीता

अर्थ—वह नारायणी शक्ति ही जगत् की उत्पत्ति का कारण है, उसी संवित् शक्ति से ही यह सब जगत् चेष्टा करता है, इस तत्त्व को समझ कर श्रद्धा और भक्ति से युक्त भक्तजन, उस "संवित्" अथवा नारायणी शक्ति का भजन करते हैं।

रुद्राणि! विद्रुम-मयीं, प्रतिमाम्-इव-त्वां
ये चिन्तयन्त्य-रुण-कान्तिम्-अनन्यरूपाम्।
तानेत्य-पक्ष्मलदृशः प्रसभं भजन्ते
कण्ठावसक्त-मृदु-बाहु-लता-स्तरुण्यः (17)

अन्वय शब्दार्थ

रुद्राणि=हे दुष्टों को रुलाने वाली माता, **ये**=जो भक्त, **त्वां**=आप को, **अरुण-कान्तिं**=लाल दीप्तिवली, **अनन्य-रूपां**=अलौकिक रूप वाली, **विद्रुममयीं**=लालरुद्र की बनी हुई मूर्ति जैसी का, **चिन्तयन्ति**=ध्यान करते

हैं, **तान्**=उन भक्तों को, **एत्य**=पास जाकर, **पक्ष्मलदृशः**=सुन्दर नेत्रों वाली शक्तियाँ, **कण्ठ**=गले में, **अवसक्त**=डाली हुई, **मृदु**=कोमल, **बाहुलताः**=बाहुओं वाली, **तरुण्यः**=शक्तिशाली अणिमादि सिद्धियाँ, **प्रसभं**=बलपूर्वक, **भजन्ते**=सेवन करती हैं।

अर्थः—हे रुद्राणि! जो भक्त जन आप की लाल दीप्तिवाली अलौकिक रूप वाली लालरुद्र की बनी हुई मूर्ति जैसी के स्वरूप का चिन्तन करते हैं, सिद्धियों की इच्छा न होने पर भी अणिमादिसिद्धियाँ बलपूर्वक उस भक्त के गले में बाहु डालकर अपने वश में करना चाहती है।

टिप्पणी—अष्टासिद्धियाँ=(1) **अणिमा**=जिस शक्ति के बल से मनुष्य अणु जैसा छोटा बन सकता है, (2) **महिमा**=शरीर फूलना (3) **गरिमा**=इच्छानुसार भारी या हल्का बनना, (4) **लघिमा**=अत्यन्त लघु होना, (5) **प्राप्ति**=किसी दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करना, (6) **प्रकाम्यम्**=जिस की प्राप्ति से सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं, (7) **ईश त्वं**=सर्वोपरिता, (8) **वश्यत्वं**=सबों को अपने अधीन करना।

त्वत्-रूपम्-उल्लसित-दाडिम-पुष्परक्तम्
उत्-भावयेत्-मदनदैवतम्-अक्षरं यः।
तं रूप-हीनम्-अपि, मन्मथ-निर्विशेषम्
आलोकयन्ति-उरु-नितम्बभरा-स्तरुण्यः(18)

अन्वय शब्दार्थ

उल्लसित=खिले हुये, **दाडिम-पुष्परक्तम्**=अनार के फूल के समान लाल वर्ण वाले, **अक्षरम्**=एक ही रूप में रहने वाले, **त्वत्-रूपं**=तुम्हारे स्वरूप को, **मदन-दैवतं**=कामदेव के स्थान पर, **यः**=जो भक्त, **उत्-भावयेत्**=भावना करे, **तं**=उस, **रूपं हीनम्-अपि**=उस रूप हीन को भी, **उरुनितम्बभराः**=बड़े कटि के भार से झुकी हुई, **तरुण्यः**=सुन्दरशक्तियाँ, **मन्मथ-निर्विशेषं**=कामदेव

की भान्ति, **आलोकयन्ति**=देखती है।

अर्थः—जो भक्त खिले हुये अनार के फूल के समान लाल वर्ण वाले अक्षर (एक ही अवस्था में रहने वाले) अथवा "क्लीं" बीजाक्षर वाले तुम्हारे रूप को कामदेव के स्थान पर भावना करे, उस कुरूप को भी सुन्दर शक्तियाँ (अणिमादिसिद्धियाँ) कामदेव की भांति देखती हैं।

टिप्पणी—अणिमादि शक्तियाँ आप के भक्त के अन्यान्य गुण न देख कर, पात्र अपात्र का विचार छोड़कर उस को अपनाती हैं।

"तत्-त्वं-पूषन्-अपावृणु" परन्तु अष्टसिद्धियों के बारे में उपनिषद् साधक को बार-बार चेतावनी देता है, इन सिद्धियों की उलझन से असली तत्व से वञ्चित हो जाओगे।

ध्यातासि हैमवति! येन हिमांशु-रश्मि
माला-मल-द्युतिर्-अकल्मष-मानसेन।
तस्या-विलम्बम्-अनवद्यम्-अनल्प-कल्पम्
अल्पैर्दिनैः सृजसि सुन्दरि! वाक्-विलासम् (19)

अन्वय शब्दार्थ

हैमवति=हे हिमालय की पुत्री, **येन**=जिसने, **अकल्मष**=पाप रहित निर्मल, **मानसेन**=मन से, **हिमांशु-रश्मिः**=चन्द्रमा की, किरणों की समूह जैसी, **अमल-द्युतिः**=निर्मल दीप्ति युक्त का, **ध्यातासि**=ध्यान किया हो, **सुन्दरि**=हे माँ! **तस्य**=उस भक्त को, **अविलम्बं**=शीघ्र ही, **अनवद्यं**=दोष रहित, **अनल्पकल्पम्**=अनर्गल, **वाक्-विलासं**=कविता का विलास, **अल्पैर्दिनैः**=थोड़े ही दिनों में, **सृजसि**=उत्पन्न करती हो।

अर्थः—हे हिमालय की पुत्री! जिस ने निर्मल मन से चन्द्रमा के किरणों के समूह जैसे, निर्मल दीप्ति से युक्त आपका ध्यान किया हो, हे माता वह भक्त विना कष्टसाध्य कुछ दिनों में ही ज्ञानवान्

बनता है, अथवा अनर्गल कवितायें करने में समर्थ होता है।

टिप्पणी–**"कवित्वं पञ्चमं ज्ञेयं"** तन्त्रालोक में कहा है, माँ के अनुग्रह का पाँचवाँ लक्षण है **"कवित्वं"** बिना किसी प्रयास के कविता का प्रसार माँ के अनुग्रह से ही संभव है।

आधार-मारुत-निरोध-वशेन येषां
सिन्दूर-रंजित-सरोज-गुणानु-कारि।
तीव्रं हृदि स्फुरति देवि! वपु-स्त्वदीयं
ध्यायन्ति तान्-इह समीहित-सिद्ध-साध्याः(20)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि!=हे माताः **आधार-मारुत**=मूलाधार वायु के, **निरोध-वशेन**=रोकने से, **येषां**=जिन को, **सिन्दूर रंजित**=सिन्दूर में रंगे हुये, **सरोज**=कमल डंडे के, **गुणानु**=तार के, **अनुकारि**=जैसे, **तीव्रं**=दीप्तिमान्, **त्वदीयं वपुः**=आपका स्वरूप जिन को, **हृदि**=हृदय में, **स्फुरति**=प्रकट होता है अथवा आपके ऐसे स्वरूप का, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं, **तान्**=उन भक्तों का, **इह**=यहाँ भूलोक में, **समीहित**=अभिलषित चाहने वाले सिद्ध और साध्य देवता, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं।

अर्थः–हे माँ! जिन भक्तों को मूलाधार वायु के रोकने से, सिन्दूर में रंगे हुये कमल के सूक्ष्मतार का जैसा दीप्तिमान आपका स्वरूप हृदय में प्रकट होता है, उन एसे भक्तों का ध्यान अपना अभिलषित सिद्ध करने के लिये सिद्ध और साध्य करते हैं।

टिप्पणी–पञ्चस्तवीकार ने ध्यान योग से ही उस अनिर्वचनीय शक्ति का साक्षात् कार किया है। उसके ध्यान का केन्द्र था "हृदय" उस शक्ति का स्वरूप कैसा है उसके बारे में कहता है 'तीव्रं त्वदीयं वपुः' न तद्भासयते सूर्यो शशांको न पावकः-यत् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। भगवद्गीता। जिस प्रकाश के सामने अग्नि चन्द्र तथा सूर्य का प्रकाश फीका पड़ता है।

ते ध्यान-योगानुगता-अपश्यन्-देवात्मशक्तिं स्वगुणै र्निगूढाम्। उपनिषद्
उन जिज्ञासु: ऋषियों ने ध्यानयोग में स्थित होकर उस परमात्म देव की स्वरूप भूत अचिन्त्य शक्ति (संवित्) का साक्षात्कार किया।

त्वाम्-ऐन्दवीम्-इव कलाम्-अनुभाल-देशम्
उत्-भासिता-म्बर-तलाम्-अवलोकयन्तः।
सद्यो भवानि! सुधियः कवयो भवन्ति।
त्वं भावनाहित-धियां कुल-काम-धेनुः (21)

अन्वय-शब्दार्थ

त्वां=तुझे, **ऐन्दवीम्-इव**=चन्द्रमा के कला के समान, **अनुभाल-देशम्**=ललाट में, **उद्भासित**=चमकाये हुये, **अम्बर तलाम्**=चित्-आकाशवाली को, **अवलोकयन्तः**=देखने वाले भक्त, **भवानि**=हे माता, **सद्यः**=शीघ्र ही, **सुधियः**=ज्ञानवान् तथा, **कवयः**=कवि बनते हैं, **त्वं**=आप, **भावना**=श्रद्धा, **आहित**=धारण किये हुये, **धियां**=बुद्धिवालों की, **कामधेनुः**=सभी कामनायें पूर्ण करने वाली हो।

अर्थः—हे माता! चन्द्रकला के समान ललाट में, चमकाये हुये चित्ताकाशवाले आपके ऐसे स्वरूप को जो देखते हैं, वे उसी क्षण सर्वज्ञ तथा कवि बनते हैं, आप की श्रद्धा धारण किये हुये बुद्धि वालों की आप कामधेनु हो, यानि हर एक कामना पूर्ण करने वाली हो।

टिप्पणी—पञ्चस्तवीकार ने पहले श्लोक "ऐन्द्रस्येव" की इस श्लोक में फिर से संकेत रूप में पुष्टि की है।

त्वां व्यापिनीति समना इति कुण्डलीति
त्वां कामिनीति कमलेति कलावतीति।
त्वां मालिनीति ललितेत्य-पराजितेति
देवि! स्तुवन्ति विजयेति जये-त्युमेति (22)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि!=हे माँ, **त्वां**=आप को, **व्यापिनी**=सर्व-व्यापक, **इति**=ऐसे ही, **समना**=निर्मल मन वाली, **इति**=ऐसे ही **कुण्डली**=कुण्डलिनी शक्ति, **इति**=ऐसे ही, **कामिनी**=भक्तों की हर कामना को पूरी करने वाली, **इति**=ऐसे ही, **कमला**=कमल की भांति संकुचित और प्रफुल्लित होने वाली, **इति**=ऐसे ही, **कलावती**=सभी कलाओं से युक्त, **इति**=ऐसे ही, **मालिनी**=वर्णमाला रूपिणी, **इति**=ऐसे ही, **ललिता**=सुन्दरता की भण्डार रूप, **इति**=ऐसे ही, **अपराजिता**=जिसको कोई जीत न सके, **इति**=ऐसे ही, **विजया**=विजयारूपा, **जया**=जयरूपा, **उमा**=पार्वती, ऐसे ही नामों से स्तुवन्ति=आप की स्तुति करते हैं।

अर्थ:—हे माता आपको सर्वव्यापक, निर्मलमन वाली, कुण्डलिनी शक्ति भक्तों की हर कामना को पूरी करने वाली, कमल की भांति संकुचित और प्रफुल्लित होने वाली, सभी कलाओं से युक्त, वर्णमाला रूपिणी सुन्दंरता का भण्डार, जिसको कोई जीत न सके, विजयारूपा, जयरूपा ऐसे ही नामों से भक्तजन स्तुति करते हैं।

टिप्पणी—एकं सत्विप्रा बहुधा वदन्ति। एक ही उस शक्ति को विद्वान् भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं।

ये चिन्तयन्त्य-रुण-मण्डल-मध्य-वर्ति
रूपं तवाम्ब! नव-यावक-पंक-पिंगम्।
तेषां सदैव-कुसुमायुध-बाण-भिन्न
वक्षःस्थला-मृगदृशो-वशगा भवन्ति (23)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता, **ये**=जो भक्त, **अरुणमण्डल-मध्यवर्ति**=सूर्य मंण्डल में स्थित, **नव**=नये, **यावक-पंक**=तरल महावर जैसे, **पिंग**=लाल, **तवरूपं**=तुम्हारे स्वरूप को, **चिन्तयन्ति**=चिन्तन अथवा विमर्श करते हैं, **तेषां**=उन भक्तों को, **कुसुमायुध**=कामदेव के बाणों से, **भिन्न**=छिलनी बनी हुई, **वक्षः स्थला**=छाती वाली, **मृगदृशः**=सुन्दर शक्तियाँ अथवा इन्द्रियाँ, **सदैव**=हमेशा, **वशगा भवन्ति**=वश में हो जाती हैं।

अर्थः—जो भक्त सूर्य मण्डल में स्थित नये तरल महावर जैसे लाल तुम्हारे स्वरूप का चिन्तन करते हैं, उन भक्तों को कामदेव के बाणों से छलनी बनी हुई, छाती वाली, सुन्दर शक्तियाँ अथवा संसार के विषयों के उपभोग से ऊभी हुई इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।

टिप्पणी—साधक ने अथवा पंचस्तवीकार ने इस श्लोक में "गायत्री उपासना" का संकेत दिया है, जबकि सूर्यमण्डल में ठहरा हुआ तेज जिस को गायत्रीमन्त्र में कहे हुये "भर्ग" नाम से पुकारा गया है—जगत्-अम्बा का ही अलौकिक प्रकाश है जिसके बारे में भविष्य पुराण में वर्णन है **"यन्मण्डलं दीप्तिकारं विशांलं"**

उत्तप्त-हेम-रुचिर [illegible] रे! पुनीहि
चेत-श्चिरन्तनं-अघौघवनं लुनीहि।
कारागृहे निगड-बन्धन-पीडितस्य
त्वत्-संस्मृतौ झट्-इति मे निगडा-स्त्रुट्यन्तु

अन्वय-शब्दार्थ

त्रिपुरे=हे तीन अवस्थाओं की साक्षीभूत माँ!, **उत्तप्त**=तपाये हुये, **हेम-रुचिरे**=सोने के जैसे सुन्दर स्वरूप वाली, **मे=चेत्तः**=मेरे चित्त के, **चिरन्तनम्**=अनन्त जन्मों के, **अघौ-घवनं**=पापों के घने जंगल को, **लुनीहि**=काटो, **कारागृहे**=शरीर रूपी अथवा संसार रूपी जेलखाने में, **निगड-बन्धन-पीडितस्य**=बेड़ियों के बन्धन से पीड़ित, **मे**=मुझे, **त्वत्-संस्मृतौ**=आपका स्मरण करते ही, **झट् इति**=उसी क्षण, **निगडाः**=बेडियाँ, **त्रुटयन्तु**=टूट जायें।

अर्थः—तीन अवस्थाओं की साक्षीभूत माँ! तपाये हुये सोने के जैसे सुन्दर स्वरूप वाली माँ! मेरे चित्त के अनन्त-जन्मों के पापों के घने जंगल को काटो, संसार रूपी जेलखाने में बेड़ियों के बन्धन से पीड़ित, मुझे आप का स्मरण करते ही उसी क्षण सभी बेड़ियाँ टूट जायें।

टिप्पणी—संसार रूपी जेल की बेड़ियाँ माता के स्मरण मात्र से टूट-टूट कर गिर जाती है जैसे - जब "वासुदेव" बालकृष्ण को अपने सिर पर उठाता है, यानी भगवान् की शरण में आता है-तो वासुदेव की सभी बेड़ियाँ टूट जाती हैं, भगवान् के बदले जब माया को सिर पर उठाता है तो फिर से सभी बेड़ियाँ, दरवाजों के ताले ज्यों के त्यों लग जाते हैं। भगवान् को सिर पर उठाने का भावार्थ है—भगवान् के शरण में जाना, अपनी खोपड़ी में भगवान् अथवा नारायण शक्ति के चिन्तन करने से सभी बेड़ियाँ टूट जाती हैं।

अघ-अपराध—"अघ" उस दुष्कर्म को कहते हैं जो वेदादि से निषद्ध होने पर भी जान बूझकर अपनी वासनानुसार किया जाये-जो क्षम्य नहीं है, "अघ" कहलाता है।

शर्वाणि! सर्वजन-वन्दित-पाद-पद्मे!
पद्मच्छद-च्छवि-विडम्बित-नेत्र-लक्ष्मि!
निष्पाप-मूर्ति-जन-मानस-राज हंसि!
हंसि त्वम्-आपदम्-अनेक विधां जनस्य (25)

अन्वय-शब्दार्थ

शर्वाणि!=हे शिव की शक्ति! **सर्वजन**=सब लोगों से, **वन्दित-पाद पद्मे**=प्रणाम किये हुये चरण कमलों वाली, **पद्मच्छद**=पद्म पत्रों की, **छवि**=शोभा के, **विडिम्बित**=समान, **नेत्रलक्ष्मि!**=सुन्दर नेत्रों वाली, **निष्पाप मूर्तिः**=शुद्ध अन्तः करण वाली, **जन**=भक्तों के, **मानस**=मनरूपी, मानस सरोवर की, **राजहंसि!**=हे राजहंसिनी, **त्वं**=आप, **जनस्य**=जनता के, **अनेकविधां**=भिन्न-भिन्न प्रकार की, **आपदम्**=आपदायें, **हंसि**=नष्ट करती हो।

अर्थः—हे जगत् माता, हे सभी जनों से प्रणाम किये हुये चरण कमलों वाली, कमलपत्रों की शोभा के समान, सुन्दर नत्रों वाली, शुद्ध अन्तःकरण वाले भक्तों के मनरूपी मानस सरोवर की राजहंसिनी, आप सभी प्रकार की आपदायें भक्त जनों की नष्ट करती हो।

टिप्पणी—जो भक्त उस माँ का साक्षात्कार चाहता है, उसके लिये आवश्यक है कि वह अपने मन को निर्मल बनाये, यानी भक्त का मन जब मानस सरोवर बनेगा तभी वह संवित् रूपी हंसिनी वहाँ डेरा डालेगी। **"तम्-अक्रतुः पश्यति वीतशोकः"** (उपनिषद्) संकल्परहित मन में ही उस "संवित्" को देखा जा सकता है।

त्वत्-पाद-पंकज-रजः प्रणिपात-पूतैः
पुण्यैर्-अनल्प-मतिभिः-कृतिभिः कवीन्द्रैः।
क्षीर-क्षपाकर-दुकूल-हिमाव-दाता
कैर्-प्यवापि भुवन-त्रितयेपि कीर्तिः (26)

अन्वय-शब्दार्थ

त्वत्=आप के, **पांदपंकज**=चरण कमलों की, **रजः**=धूलि को, **प्रणिपात**=प्रणाम

करने से, **पूतैः**=पवित्र बने हुये, **पुण्यैः**=पुण्यात्माओं ने, **अनल्पमतिभिः**=बड़ी बुद्धिवाले, **कृतिभिः**=कृत कृत्य, **कवीन्द्रैः**=कवियों ने, **कैः**=कई, **क्षीर**-दूध, **क्षपाकर**=चन्द्रमा, **दुकूल**=रेशम, **हिम**=बर्फ जैसा, **अवदाता**=निर्मल, **कीर्तिः**=यश, **भुवनत्रितये**=तीन लोकों में, **अवापि**=प्राप्त किया।

अर्थः—आप के चरण कमलों की धूलि को, प्रणाम करने से पवित्र बने हुये, कई पुण्यात्माओं, बुद्धिमानों, कृतकृत्य कवियों ने दूध, चन्द्रमा, रेशम, बर्फ जैसी निर्मल स्वच्छ कीर्ति प्राप्त की है।

टिप्पणी—सम्भावितस्य चा कीर्ति-र्मरणात्-अतिरिच्यते

माननीय पुरुष के लिये कीर्तिका न होना अथवा अकीर्ति (बदनामी) का होना मरण से भी बुरी बात होती है।

एक गृहस्थी के लिये कीर्ति का होना एक अनिवार्य गुण है, जबकि लौगाक्ष मुनि ने 24 संस्कारों में 'यशस्काम' को एक महत्व पूर्ण संस्कार माना है, इस संस्कार में गुरु शिष्य को आशीर्वाद देता है "यशस्वी भव" हे बेटा! तू कीर्तिवाला बन, तुम्हारा जीवन तब सफल जीवन है जब तुम्हारी निर्मल कीर्ति दसों दिशाओं में फैली हो, परन्तु वह कीर्ति प्राप्त करना आसान नहीं जिस पर माता का अनुग्रह होगा वही निर्मल कीर्ति वाला होता है, जैसाकि उपरिलिखित श्लोक में दर्ज है।

त्वत्-रूपैक-निरूपण-प्रणयिता बन्धो दृशो-स्त्वत्-गुण
ग्रामा-कर्णन-रागिता श्रवणयो-स्त्वत्-संस्मृति-श्चेतसि।
त्वत्-पादार्चन-चातुरी करयुगे, त्वत् कीर्तनं-वाचि मे
कुत्रपि त्वत्-उपासन-व्यसनिता, मे देवि! मा शाम्यतु(27)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि=हे माता, **मे**=मेरे, **दृशोः**=नेत्रों को, **त्वत्**=आप के **निरूपण**=देखने की, **प्रणयिता**=प्रेम का, **बन्धः**=लगाव **त्वत्**=आपके, **श्रवणयोः**=कानों को, **गुणग्राम**=गुणों के समूह के, **आकर्णन**=सुनने का, **रागिता**=प्रेम, **त्वत् संसृति**=आप का स्मरण, **चेतसि**=चित्त में, **कर युग**=दोनों हाथों में,

त्वत्=आप के, **पदार्चन**=चरणों के पूजा की, **चातुरी**=चतुरता। **मे** =**वाचि**=मेरी वाणी में, **त्वत्**=आप का, **कीर्तन**=कीर्तन **कुत्रापि**=कभी भी अथवा कहीं भी, **त्वत्**=आपकी, **उपासन-व्यसनिता**=उपासना करने के भाव में, **मा शाम्यतु**=ढील न आये।

अर्थः—हे माँ मेरे नेत्रों को आपके देखने के प्रेम का लगाव, कानों को आपके गुणों के सुनने का राग, चित्त में आपकी स्मृति, मेरे हाथों में आपके चरणों की सेवा का चातुर्य, मेरी वाणी में आप का कीर्तन, कभी कहीं अथवा किसी भी अवस्था में कम न हो।

टिप्पणी—जो माँ का भक्त सभी कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियाँ माँ के ही पूजनादि में व्यस्त रखता है, उस भक्त का योगक्षेम कैसे चलता है? ऐसे भक्त के बारे में भगवान् की गीता में प्रतिज्ञा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते तेषां नित्यभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।
जो रात दिन उसी संवित् शक्ति की उपासना में लगे रहते हैं, ऐसे भक्तों का योगक्षेम वह "संवित्" शक्तिरूप माता ही चलाती है। **योग**=अप्राप्त की प्राप्ति। **क्षेम**=प्राप्त किये हुये की रक्षा।

उद्दाम-काम-परमार्थ-सरोज-षण्ड-
चण्ड-द्युति-द्युतिम्-उपासित-षट्-प्रकाराम्।
मोह-द्विपेन्द्र-कदनोद्यत-बोध-सिंह-
लीला-गुहां भगवतीं त्रिपुरां नमामि (28)

अन्वय-शब्दार्थ

उद्दाम=सीमारहित, **काम**=ऐहिक इच्छायें, **परमार्थ**=आध्यात्मिक इच्छायें रूप (मानिये), **सरोजषण्ड**=कमलों के समूह को प्रफुल्लित करने के लिये, **चण्डद्युति**=प्रखर-सूर्य की जैसी, **द्युतिं**=प्रकाशवाली, **उपासित**=उपासना की जाने वाली, **षड्प्रकाराम्**=योग के षड् अंगों से, **मोह**=मोहरूपी, **द्विपेन्द्र**=हाथी को, **कदंन**=मारने के लिये, **उद्यत**=तैयार, **बोधसिंह**=ज्ञानरूपी

शेर की, **लीला गुहां**=क्रीडा की गुफारूप, **भगवतीं त्रिपुरां**=त्रिपुरा भगवती को नमस्कार करता हूँ।

अर्थ:—सीमारहित, ऐहिक तथा पारमार्थिक इच्छा रूपी कमल सरोवर को प्रफुल्लित करने के लिये, प्रचण्ड-सूर्य की जैसी प्रकाशवाली, योग के छ: अंगों से उपासना की जाने वाली, मोहरूपी हाथी को मारने के लिये तैयार बैठी, ज्ञान रूपी शेर की लीला गुफा बनी हुई त्रिपुरा भगवती को नमस्कार हो।

टिप्पणी—हे माता जो मेरी सीमा रहित ऐहिक अथवा पारमार्थिक इच्छायें हैं, वह मानिये एक कमल का सरोवर है, जैसे कमल का सरोवर सूर्योदय से प्रफुल्लित होता है, वैसे ही आप मेरी सीमा रहित इच्छाओं के लिये प्रखर किरणों वाली सूर्य हो, यानि आप ही मेरी इच्छाओं को पूर्ण कर सकती हैं, माँ! मेरे मोह रूपी हाथी का नाश ज्ञानरूपी शेर ही कर सकता है, वह ज्ञान रूपी शेर भी कहीं इधर-उधर नहीं है, बल्कि माँ आप ही उस शेर के खेलने की गुफा हो, यानी मेरे मोह का नाश करने वाला शेर भा आप के ही नियंत्रण में है।

योग के षडंग:—प्रत्याहार, ध्यान, प्रणायाम, धारणा, तर्क, समाधि

योग के षडंग:—प्राणायाम, ध्यान, प्रणायाम, धारणा, तर्क, समाधि-तन्त्रालोक के टीकाकार (जयरथ)

गणेश-वटुक-स्तुता-रति-सहाय कामान्विता
स्मरारि-वर-विष्टरा, कुसुमबाण-बाणै-र्युता।
अनंग-कुसुमादिभिः परिवृता च सिद्धैः त्रिभिः
कदम्ब-वन-मध्यगा, त्रिपुर-सुन्दरी पातु नः (29)

अन्वय-शब्दार्थ

गण=गणेश, **ईश**=शंकर, **वटु:**=विष्णु, **क**=ब्रह्मा से की गई, **स्तुता**=स्तुतिवाली, **रतिसहाय कामान्विता**=रति सहित कामदेव से युक्त, **स्मरारि:**=शंकर के, **वर**=उत्तम, **विष्टरा**=आसन पर बैठी हुई, **कुसुम बाण-बाणै:**=कामदेव

के पाँच बाणों से, **युता**=युक्त, **अनंग-कुसुमादिभिः**=कामदेव की पाँचशक्तियों से, **परिवृता**=घेरी हुई, **त्रिभिः**=तीन, **सिद्धैः 'ऐं-क्लीं-सौः'**=मन्त्रों से प्राप्य, **कदम्बवन मध्यगा**=कदम्ब वन के बीच में ठहरी हुई, **त्रिपुर सुन्दरी**=संवित् शक्ति, **पातु नः**=हमारी रक्षा करें।

अर्थः—गणेश, शंकर, विष्णु, ब्रह्मा से की गई स्तुतिवाली, रति सहित कामदेव से युक्त, उत्तम शिवासन पर बैठी हुई, कामदेव के पाँच बाणों से युक्त, कामदेव की पांच शक्तियों से घेरी हुई, "ऐं क्लीं सौः" इन तीन बीजाक्षरों से की हुई स्तुति वाली अथवा (प्राप्त होने वाली) कदम्ब के वन में ठहरी हुई त्रिपुरा भगवती हमारी रक्षा करें।

टिप्पणी—जिस कामदेव के बाण देवताओं असुरों मनुष्यों में असफल नही रहे **"असिद्धार्था नैव क्वचित्-अपि स-देवासुरनरे"** उन्हीं बाणों तथा कामदेव की सम्मोहनादि शक्तियों से त्रिपुरसुन्दी घेरी हुई है, कदम्बवृक्षों के जंगल में ठहरी हुई है, जिस कामदेव को शंकर ने भस्म किया था, वह शंकर भी जिस माँ का आसन बना है, ऐसी शक्तिशाली जगदम्बा के सामने कामदेव के पाँच बाण तथा पाँच शक्तियाँ क्या महत्त्व रखती हैं।

कामदेव के पाँच बाण (फूल)—अरविंद, अशोक, धूत, नवमल्लिका, नीलोत्पल

पांच बाणों की पाँच शक्तियाँ—उन्माद, तापन, शोषण, स्तम्भन, संमोहन, **कदम्बवृक्ष**-सम्मोहनादि पाँच शक्तियों का उपयोगी वृक्ष माना जाता है।

यस्तोत्रम्-एतत्-अनुवासरम्-ईश्वरायाः
श्रेयस्करं पठति वा यदि वा शृणोति।
तस्येप्सितं फलति राजभिर्-ईड्यतेऽसौ
जायेत स प्रियतमो हरिणेक्षणानाम् (30)

अन्वय-शब्दार्थ

यः=जो भक्त, **स्तोत्रम्-एतत्**=यह स्तोत्र, **ईश्वरायाः**=भगवती का, **श्रेयस्कर**=कल्याणकारी, **अनुवासरम्**=प्रतिदिन, **पठति**=पढता है, **यदि वा**=अथवा, **श्रृणोति**=सुनता है, तस्य=उसके, **इप्सितं**=मनोभिलषित,

फलति=सिद्ध हो जाते हैं, **असौ**=वह भक्त, **राजभिः**=राजाओं से, **ईड्यते**=स्तुति किया जाता है, **हरिणेक्षणीनां**=अणिमादि सिद्धियों का, **प्रियतमो भवति**=प्यारा बनता है।

अर्थः—जो जगत् जननी का यह कल्याणकारी स्तोत्र प्रतिदिन पढ़ता है या सुनता है, उसके सभी मनोभिलषित सिद्ध हो जाते हैं, वह भक्त राजाओं से भी स्तुति किया जाता है, तथा अणिमादि सिद्धियों का वह प्यारा बनता है।

टिप्पणी—"त्वाम्-आश्रिता ह्याश्रियतां प्रयान्ति" दुर्गासप्त०
माँ जो तुम्हारी शरण में आते हैं, सभी राजे महाराजे उनके शरण में आते हैं-अणिमादिसिद्धियाँ उनके पीछे-पीछे लुढकती हैं।

बह्मेन्द्र-रुद्र-हरि-चन्द्र-सहस्त्र-रश्मि-
स्कन्द-द्विपानन-हुताशन-वन्दितायै।
वागीश्वरि! त्रिभुवनेश्वरि! विश्वमातः
अन्त-र्बहिश्च कृत-संस्थितये नमस्ते (31)

अन्वय-शब्दार्थ

वागीश्वरि!=परा, पश्यन्ती-वैरवरी वाणियों की स्वामिनी, **त्रिभुवनेश्वरि!**=तीनों भुवनों की स्वामिनी, **विश्वमातः!**=जगत् जननी, **ब्रह्म**=ब्रह्मा, **इन्द्र**=इन्द्र, **रुद**=शंकर, **हरिः**=विष्णु, **चन्द्र**=चन्द्रमा, **सहस्त्ररश्मिः**=सूर्य, **स्कन्द**=कुमार, **द्विपानन**=गणेश, **हुताशन**=अग्नि से, **वन्दितायै**=प्रणाम की हुई, **अन्तः**=अन्तःकरणों ज्ञानेन्द्रियों, **बहिः**=बाह्येन्द्रियों में, **कृत**-संस्थितये=ठहरी हुई, **माता नमस्ते**=आप को बार-बार नमस्कार हो।

अर्थः—हे वाणियों की स्वामिनी! तीन भुवनों की स्वामिनी! हे जगत् जननी! ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य-कुमार, गणेश तथा अग्नि देवता से की हुई प्रणामवाली, ज्ञानेन्द्रियों कर्मेन्द्रियों पांच प्राणों मन,

बुद्धि तथा चित्त में स्थिति वाली, शक्ति देने वाली माँ आप को बार-बार नमस्कार है।

टिप्पणी–यन्माया-वश्यवर्ति-विश्वम्-अखिलं, ब्रह्मादि-देवा-सुराः

यत्-सत्त्वा-अमृषैव भाति सकलं, रज्जौ यथा हे-र्भ्रमः।। रामचरितमानस

जिस संवित् अथवा माया के वशीभूत विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिस माया की सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भांति यह सारा दृश्य जगत् प्रतीत होता है, उसमायापति राम की शक्ति को नमस्कार हो।

इति पंचस्तव्यां द्वितीयःचर्चस्तवः

अथ पञ्चस्तव्यां घटस्तवःतृतीयः

देवि! त्र्यम्बक-पत्नि! पार्वति! सति! त्रैलोक्यमातः! शिवे!
शर्वाणि! त्रिपुरे! मृडानि! वरदे! रुद्राणि! कात्यायिनि!
भीमे! भैरवि! चण्डि! शर्वरि! कले! कालक्षये! शूलिनि!
त्वत्-पाद-प्रणतान्-अनन्यमनसः पर्याकुलान् पाहि-नः।।1।।

अन्वय-शब्दार्थ

देवि=हे क्रीडनशील माता, **त्रयम्बक पत्नि**=शंकर की शक्ति, **पार्वति**=पर्वत की पुत्री, **सति**=हे सती, **त्रैलोक्य मातः**=हे तीनों लोकों की माता, **शिवे**=हे कल्याणकारी, **शर्वाणि**=हे शंकर की संहारिनी शक्ति, **त्रिपुरे**=तीनों अवस्थाओं की साक्षी रूपा, **मृडानि**=आनन्द देने वाली, **वरदे**=अभीष्ट फल देने वाली, **रुद्राणि**=दुष्टों को रुलाने वाली, **कात्यायिनि**=हे सुन्दर रूप वाली, **भीमे**=दुष्टों के लिये भयंकर रूप को धारण करने वाली, **भैरवि**=हे भैरवरूप शंकर की शक्ति, **चण्डि**=चराचर सृष्टि को प्रकाशित करने वाली, **शर्वरि**=शवारूप शिव की शक्ति, **कले**=चन्द्रकला रूप वाली, **कालक्षये**=काल को नाश करने वाली, **शूलिनि**=तीन दुःखों का नाश करने वाली, **त्वत्**=तुम्हारे, **पाद**=चरणों में, **प्रणतान्**=झुके हुये, **अनन्यमनसः**=आप में एकाग्रता से लगाये हुये मन वाले, **पर्याकुलान्**=चारों ओर से व्याकुल, **नः** हम भक्तों की, **पाहि**=रक्षा कीजिये।

अर्थः—देवी आदि संबोधन के नामों से ग्रन्थकार ने इस श्लोक के अन्त में प्रार्थना की है, "हे माँ! हम चारों ओर से आपदाओं में डूबे हुये हैं, हमारी रक्षा कीजिये।

टिप्पणी–पंचस्तवीकार ने माता के प्रचलित असंख्य नामों में से चुन कर रहस्यपूर्ण अर्थवाले 19 नाम इस श्लोक में कहे हैं। जिन हज़ारों नामों से भक्त जगत् माता को पूजते हैं, उनके बारे में वेदों का कहना है। "यस्या स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मात् उच्यते "अज्ञेया" जिसके स्वरूप को बह्मादि देवता भी नहीं जानते इसलिये उसका नाम है "अज्ञेया" "यस्या जननं नोपलभ्यते" जिसका जन्म देने वाला कोई नहीं है। अत: उसको अजा कहते हैं, एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मात् उच्यते एका" सारी चराचर सृष्टि में एक ही शक्ति ओत-प्रोत है अत: उसको "एका" कहते हैं। इन प्रमाणों से सिद्ध है उस अनिर्वचनीय "संवित्" का कोई नाम रूप नहीं है, परन्तु उस माँ को रूप देने वाली नाम देने वाली भावना होती है–हनुमान् "सेवक" रूप में भगवान् के पास गये भगवान् "स्वामी" रूप में हनुमान से मिले, "ब्रह्मचारिणी" उमा से शंकर बह्मचारी रूप में ऐसे ही पाशुपत अस्त्र के लिये तपस्या करते हुये अर्जुन से माता "शिकारिन" रूप में मिली। (जैसी भावना वैसा भगवान्)

उन्मत्ता इव, सग्रहा इव, विषव्यासक्त-मूर्च्छा इव
प्राप्त-प्रौढमदा इवाति विरह-ग्रस्ता-इवार्ता-इव
ये ध्यायन्ति हि शैलराज-तनयां-धन्यास्त-एकाग्रत-
स्त्यक्तोपाधि-विवृद्ध-रागमनसो ध्यायन्ति वामभ्रुवः (2)

अन्वय-शब्दार्थ

उन्मत्ता इव=पागलों की भांति जैसे, **सग्रहा इव**=जिस को भूत आदि ग्रह अवष्टि हुये हों जैसे, **विषव्यासक्त**=ज़हर लगने से, **मूर्च्छा इव**–मूर्छित हुये जैसे, **प्राप्त-प्रौढमदा इव**=प्राप्त हुये अधिक नशे वाले जैसे, **अति-विरह ग्रस्ता इव**=प्रेमी के विरह (पीड़ा) से ग्रस्त जैसे, **आर्ता इव**=आर्त जैसे, **ये** जो भक्त, **हि**=निश्चय करके, **शैलराज तनयां**=हिमालय की पुत्री पार्वती का, **एकाग्रतः**=एकाग्रता से, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं, **ते धन्या**=वे सौभाग्यशाली हैं, ऐसे भक्तों को, **त्यक्त**=छोड़े हुये उपाधि शरीर के मोहवाली, **विवृद्ध**=बड़े हुये **रागमनसः**=प्रेम से भरी मनवाली, **वामभ्रुवः**=अणिमादिसिद्धियाँ, **ध्यायन्ति**=ध्यान करती है।

अर्थ:–जो भक्त जन जगदम्बा का ध्यान करने पर अपनी सुधबुध

खोकर पागल जैसे भूतों से आविष्ट हुये जैसे, ज़हर लगने से मूर्छित हुये जैसे, अधिक नशे से उन्मत्त हुये जैसे, अपने प्रेमी के विरह से तड़पते हुये जैसे, आर्त जैसे हो जाते हैं वे भक्त धन्य हैं, ऐसे भक्तों का ध्यान प्रेम से भरी हुई अणिमादि सिद्धियाँ अपनी सुधबुध खोकर करती है यानी अणिमादि सिद्धियाँ ऐसे भक्तों के पीछे लुढकती फिरती हैं।

टिप्पणी–जो भक्त हर समय वाणी से आप का कीर्तन, आँखों से आप का दर्शन, मन से आप का ध्यान करता है, अष्ट-सिद्धियाँ, उस भक्त को चाहती ही नहीं है, बल्कि उस भक्त के चरण चूमती है।

देवि! त्वां सकृत्-एव यः प्रणमति, क्षोणीभृत-स्तंनम-
न्त्याजन्म-स्फुरत्-अंघ्रि-पीठ-विलुठत्-कोटीर-कोटिच्छटाः।
यस्त्वाम्-अर्चति सोऽर्च्यते सुरगणै-र्यः स्तौति स स्तूयते
यस्त्वां ध्यायति तं स्मरार्ति-विधुरा ध्यायन्ति वामभ्रुवः (3)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि=हे देवी, **यः**=जो, **त्वां**=तुम्हे, **सकृत्-एव**=एक ही बार, **प्रणमति**=झुकता है, **आजन्म**=जन्म से ही, **स्फुरत्**=चमकते हुये, **अंघ्रिपीठ**=पादपीठ पर, **विलुठत्**=लुढकते हुये, **कोटीर**=ताजों की, **कोटि**=चोटियों की, **छटाः**=शोभा वाले, **क्षोणीभृतः**=राजा लोग, **तं**=उसको, **नमन्ति**=झुकते हैं, **यः**=जो, **त्वां**=तुम्हे, **अर्चति**=पूजा करता है, **सः**=वह, **अर्च्यते**=पूजा जाता है, **सुरगणैः**=देवताओं से, **यः स्तौति**=जो तुम्हारी स्तुति करता है, उसकी स्तुति की जाती है, **यः**=जो, **त्वां ध्यायति**=जो तुम्हारा ध्यान करता है, **तं**=उस भक्त को, **स्मरार्ति विधुरा**=विषयों के उपभोग से व्याकुल बनी हुई **वामभ्रुव** इन्द्रियाँ अथवा योगनियाँ, **ध्यायन्ति**=ध्यान करती है, वश में हो जाती हैं।

अर्थः–हे माँ जो एक बार ही आप को प्रणाम करता है, उनको

ऐसे चक्रवर्ती राजा लोग झुकते हैं, जिन चक्रवर्ती राजाओं के पादपीठ गणराज्यों के लुढ़कते हुये मुकटों के अग्रभाग के छटा से सुशोभित होते हैं, जो तुम्हारी पूजा करते हैं, उन्हें देवता पूजा करते है, जो तुम्हारी स्तुति करते हैं, देवता उनकी स्तुति करते, जो तुम्हारा ध्यान करते हैं उन भक्तों की विषयों की उपभोग से व्याकुल बनी हुई इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।

टिप्पणी–त्वाम्-आश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति" दुर्गसप्तशती॰
हे माता! तुम्हारी शरण में आये हुये मनुष्य दूसरों को शरण देने वाले बनते हैं।

ध्यायन्ति ये क्षणमपि त्रिपुरे! हृदि त्वां
लावण्य-यौवन-धनैर्-अपि विप्रयुक्ताः।
ते विस्फुरन्ति ललितायत-लोचनानां
चित्तैक-भित्ति-लिखित-प्रतिमाः पुमांसः (4)

अन्वय-शब्दार्थ

त्रिपुरे=हे माता! **ये**=जो भक्त, **लावण्य**=सुन्दरता, **यौवन**=जवानी, **धनैर्-अपि**=धन से भी, **विप्रयुक्ताः**=हीन, **क्षणमपि**=थोड़ी देर के लिये भी, **हृदि**=अपने हृदय में, **त्वां**=आप का, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं, ते **पुमांसः**=वह पुरुष, **ललित**=सुन्दर, **आयत**=बड़ी, **लोचनानां**=नेत्रों वाली, योगनियों के, **चित्ते**=चित्त में, **एकभित्ति**=एक दीवार पर लिखित=खिची हुई, **प्रतिमाः**=मूर्तियाँ जैसी, **विस्फुरन्ति**=दिखाई देती हैं।

अर्थः—हे माता! जो मनुष्य सुन्दरता, जवानी, धन से हीन होते हुये भी, क्षणमात्र भी हृदय में एकाग्रता से आपका ध्यान करते हैं, उनकी प्रतिमायें सुन्दर योगनियों के हृदय में दीवार पर खींचे हुये चित्र की भाँति दिखाई देती हैं, यानी सुन्दर योगनियाँ उन रूपहीन, बृद्ध, निर्धन

मनुष्यों को अपने हृदय में स्थान देती है।

टिप्पणी–हे माता यदि कोई कुरूप निर्धन मनुष्य भी आप का ध्यान करता है तो आप की अनुग्रह दृष्टि से वह भक्त सुन्दर नीरोग तथा धनवान अवश्य बनता हे, उसके अतिरिक्त योगनियाँ तथा सिद्धियाँ उस भक्त का एकाग्रता से ध्यान करती हैं–यानी उस भक्त के वश में हो जाती हैं।

एतं किं नु दृशा पिवाम्युत, विशाम्यस्यांगम्–अंगैर्निजैः
किं वामुं निग–लाम्यनेन सहसा किं वैकताम्–आश्रये।
तस्येत्थं विवशो विकल्प–घटना कूतेन योषित्–जनः
किं तत्–यत्–न करोति देवि! हृदये यस्य त्वम्–आवर्तसे (5)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि=हे देवि, **यस्य**=जिस भक्त के, **हृदये**=हृदय में, **त्वम्**=आप, **आवर्तसे**=बार बार आकर ठहरती हो, **तस्येत्थं**=उस भक्त के बारे में, **विवशः**=विवश होकर, **विकल्प घटना कूतेन**=मन के विकल्पों (तरंगों) के प्रयोजन से, **योषित्–जनः**=अणिमादि सिद्धियाँ अथवा योगिनियाँ, **किं तत्**=ऐसा कौन सा कार्य है, **यत् करोति**=ज़ो करती नहीं है–वह सिद्धियाँ उस भक्त के बारे में सोचती हैं, **एतं**=इस भक्त को, **किं**=क्या, **नु**=निश्चय करके, **दृशा**=आँखों से, **पिवामि**=पी जाऊँ, **उत**=अथवा, **अंगैः निजैः**=अपने अंगों से, **विशामि**=आप में समा जाऊँ, **किंवा**=अथवा **निगलामि**=निगल जाऊँ, **किंवा**=अथवा, **सहसा**=झटपट, एकतां=एकभाव का, **आश्रये**=आश्रयलें।

अर्थः–हे देवी! जिस भक्त के हृदय में आप बार–बार आकर ठहरती हो, ऐसे भक्त के बारे में विवश होकर मनके भिन्न–भिन्न विकल्पों से–अणिमादि सिद्धियाँ ऐसा कौन सा कार्य है जो करती नहीं है, वे सिद्धियाँ उस भक्त के बारे में सोचती हैं–"क्या इस भक्त को आँखों से पी जायें, अथवा अपने अंगों से इसी में समा जायें

अथवा इस भक्त को निगल जायें अथवा झटपट एक भाव का आश्रय लें।

टिप्पणी–जिस भगत के हृदय में माता ठहरती है उस भक्त के लिये योगनियाँ अथवा अष्टसिद्धियाँ बलिदान हो जाती है–"बलि" से तात्पर्य है "देवोद्देश्येन स्वोपहारत्यागो बलिः" देवता के लिये अथवा अपने इष्ट के लिये (ध्येय के लिये) "स्व" खुदी का त्याग करना यानी उसी ध्येय में लय हो जाना, भेदभाव का न रहना।

विश्व-व्यापिनि यत्-वत्-ईश्वर इति, स्थाणौ-अनन्याश्रयः
शब्दः शक्तिर्-इति त्रिलोकजननि! त्वय्येव तथ्य-स्थितिः
इत्थं सत्यपि शक्नुवन्ति यत्-इमाः क्षुद्रा रुजो बाधितुं
त्वत्-भक्तान्-अपि न क्षिणोषि च-रुषा, तत्-देवि! चित्रं महत् (6)

अन्वय-शब्दार्थ

त्रिलोक जननि=हे तीनों लोकों की माता! **यत्-वत्**=जिस प्रकार, **अनन्याश्रयः**=स्वतन्त्र, **ईश्वरः**=ईश्वर शब्द, **विश्वं-व्यापिनि**=सर्वव्यापक, **स्थाणौ**=शंकर के लिये प्रयुक्त होता है, **इति**=ऐसे ही, **शक्तिः शब्दः**=शक्ति यह शब्द, **त्वयि एव**=तुम्हारे लिये, **तथ्य=स्थितिः**=सार्थकरूप में प्रयुक्त होता है, **इत्थं सति अपि**=ऐसा होने पर भी, **यत्**=यदि, **इमाः**=यह, **क्षुद्रा रुजः**=तुच्छ रोगादि, **त्वत्-भक्तान् अपि**=तुम्हारे भक्तों को भी, **बाधितुं**=कष्ट देने के लिये, **शक्नुवन्ति**=समर्थ बनते हैं, **रुषा**=तुम क्रोधित होकर, **न क्षिणोषि**=नष्ट नहीं करती हो, **देवि=हे देवी, तत्**=वह, **महत्चित्रं**=बहुत आश्चर्य है।

अर्थः–हे तीनों लोकों की माता! जिस प्रकार स्वतन्त्र ईश्वर शब्द सर्वव्यापक शंकर के लिये प्रयुक्त होता है, ऐसे ही शक्ति शब्द तुम्हारे लिये सार्थक रूप में प्रयुक्त होता है, ऐसा होने पर भी यह तुच्छ रोगादि तुम्हारे भक्तों को भी कष्ट देने के लिये समर्थ बनते हैं, तुम

क्रोधित होकर उनको नष्ट नहीं करते हैं, वह बहुत आश्चर्य है।

टिप्पणी–ईश्वर: शब्द का अर्थ है (कर्तुम्-अकर्तुम्समर्थ:) सम्भव को असम्भव और असम्भव को सम्भव बनाने वाला।

शक्ति का अर्थ है–अघटन-घटीयसी, यानी सर्वशक्ति युक्त।

इन्दो-र्मध्यगतां मृगांक-सदृशच्छायां मनो-हारिर्णीं
पाण्डूत्फुल-सरोरुहासन-गतां, स्निग्ध-प्रदीपच्छविम्।
वर्षन्तीम्-अमृतं भवानि! भवतीं ध्यायन्ति ये देहिनः
ते निर्मुक्त-रुजो भवन्ति विपदः प्रोज्झन्ति तान्-दूरतः(7)

शब्दार्थ-अन्वय

भवानि! हे माता, **इन्दोः**=चन्द्रमा के, **मध्यगतां**=बीच में स्थित, **मनोहारिर्णीं**=मनोहर, **मृगांकसदृशच्छायां**=हिरण के समान शोभावाली, **पाण्डु**=सफेद **उत्फुल**=खिले हुये, **सरोरुह**=कमल के, **आसनगतां**=आसन पर ठहरी हुई **स्निग्ध**=तेल से भरे हुये, **प्रदीपछवि**=दीपक की जैसी दीप्तिवाली, **अमृतं-वर्षन्तीं**=अमृत-बरसाती हुई, **भवतीं**=आपका, **ये देहिनः**=जो मनुष्य, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं, **ते**=वे, **निर्मुक्तरुजः**=छूटे हुये रोगवाले, **भवन्ति**=होते हैं, **विपदः**=विपदायें, **तान्**=उनको, **दूरतः प्राज्झन्ति**=दूर छोड़ती हैं।

अर्थः–हे जगत् माता। चन्द्रमा के बीच में स्थित, मनोहर हिरण के समान शोभावाली, सफेद कमल के आसन पर ठहरी हुई, तेल से भरे हुये, दीपक की जैसी दीप्तिवाली अमृत बरसाती हुई, ऐसे ही रूप वाली का जो प्राणी ध्यान करते हैं, वे रोगों से मुक्त हो जाते हैं, विपदायें उनके पास टिकती नहीं हैं।

टिप्पणी–रोगान्-अशेषान्-अपहंसि तुष्टा..........
त्वाम्-आश्रितानां न विपत्-नराणाम्।। दुर्गासप्त०

आपके सन्तुष्ट होने पर आध्यात्मिक, आधि दैविक आधि भौतिक, ताप दुःख नष्ट हो जाते हैं, जो माँ की शरण में आता है उस पर विपत्ति आती ही नहीं है।

पूर्णेन्दोः शकलैर्-इवा-तिबहलैः, पीयूष पूरैर्-इव
क्षीराब्धे-र्लहरी-भरैर् इव, सुधा-पंकस्य पिण्डैर्-इव।
प्रालेयैर्-इव निर्मितं तव वपुर्ध्यायन्ति ये श्रद्धया
चित्तान्तर्-निहतार्ति-ताप-विपदस्ते सम्पदं बिभ्रति(8)

अन्वय-शब्दार्थ

पूर्णेन्दोः=पूर्ण चन्द्रमा के, **शकलैर्**-इव=टुकड़ों से जैसे, **अतिबहलैः**=पर्याप्त, **पीयूष पूरैर्-इव**=अमृत के प्रवाहों से जैसे, **क्षीराब्धेः**=क्षीर सागर के, लहरी **भरैर्-इव**=तरंगों के समूह से जैसे, **सुधापं-कस्य पिण्डैर्'इव**=अमृत के गारे के पिण्डों से जैसे, **प्रालेयैर्-इव**=बर्फ, जैसे **निर्मितं**=बने हुये, **तव वपुः**=आप के स्वरूप का, **ये**=जो **श्रद्धया**=श्रद्धा से, **ध्यायन्ति**=ध्यान करते हैं, **ते**=वे भक्तजन, **चित्तान्तर्**=मन के अन्दर, **निहत**=नष्ट हुये, **आर्ति**=दीनता, **ताप**=दुःख, **विपदः**=विपदावाले, **सम्पदं**=सम्पदाओं को **बिभ्रति**=धारण करते हैं।

अर्थः—पूर्ण चन्द्रमा के टुकड़ों से बने हुये जैसे, अमृत के प्रवाहों से क्षीर सागर के लहरों से, अमृत के गारे के पिण्डों से, बर्फ से बने हुये जैसे आप के निर्मलरूप का जो श्रद्धा से ध्यान करते हैं, उन भक्तों के मन में स्थित दीनता दुःख तथा विपदाओं का नाश होकर सम्पदा की प्राप्ति होती है।

टिप्पणी—साधक माता के प्रेम के आवेश में आकर अपनी कल्पना से निर्विकल्प माता को सविकल्प बना कर उसके ही ध्यान से साधक को क्या कुछ नहीं मिल सकता है
"किं किं दुःखं दनुजदलिनि! क्षीयते न स्मृतायां"
वह कौन सा ऐसा दुख है जो आपके (माता के) स्मरण करने से नष्ट नहीं होता है।

ये संस्मरन्ति तरलां सहसोल्लसन्तीं
त्वां ग्रन्थि-पञ्चकभिदं तरुणार्क-शोणाम्।
रागार्णवे बहलरागिणि मज्जयन्तीं
कृत्स्नं जगत्-दधति चेतसि तान्-मृगाक्ष्यः (9)

अन्वय शब्दार्थ

तरलां=स्पन्दात्मिक (चंचल), **सहसा**=बिना किसी प्रयत्न के, **उल्लसन्तीं**=विकसित रूप वाली, **ग्रन्थि पंचक भिदं**=पाँच तत्वों पृथ्वी, जल, तेज, वायु; आकाश को अपने नियन्त्रण में रखने वाली, **तरुणार्क**=उदित सूर्य की जैसी, **शोणाम्**=लाल वर्ण वाली, **बहलरागिणि**=लाल रंग से भरपूर, **कृत्स्नं जगत्**=सारे संसार को, **रागार्णवे**=भक्ति के सागर में (आनन्द में), **मज्जयन्तीं**=डुबाने वाली, माता के ऐसे स्वरूप का, **ये**=जो भक्त, **संस्मरन्ति**=स्मरण अथवा ध्यान करते हैं, **मृगाक्ष्यः**=योगिनियाँ **तान्**=उन भक्तों को, **चेतसि**=मन में, **दधति**=धारण करती हैं।

अर्थ—स्पन्दात्मिक अथवा चंचल, हर समय विकसित रूप वाली पाँच तत्वों का नियन्त्रण करने वाली, उदित सूर्य की जैसी लाल रंगवाली, लालरंग से भरपूर सारे जगत को भक्ति के सागर (आनन्द) में डुबाने वाली, माता के ऐसे स्वरूप का जो भक्त स्मरण करता है योगिनियाँ उस भक्त को मन में धारण करती हैं। सभी शक्तियाँ उस भक्त के वश में हो जाती हैं।

टिप्पणी—चेतना शक्ति मातृरूप मानी जाती है। (चेतना) माता का रंग लाल माना गया है, माता का स्वरूप रजो गुणात्मक है, रजोगुण का वर्ण भी लाल माना गया है।

लाक्षारस-स्नपित-पंकज-तन्तु-तन्वीम्-
अन्तः स्मरत्यनुदिनं भवतीं भवानि।
यस्तं स्मर-प्रतिमम्-अप्रतिम-स्वरूपा
नेत्रोत्पलैं-र्मृगदृशो भृशम्-अर्चयन्ति (10)

अन्वय शब्दार्थ

भवानि=हे माता, **लाक्षारस**=लाक्षा रस में, **स्नपित**=भिगोयी, **पंकज तन्तु**=कमल की सूक्ष्मतार जैसी, **तन्वीं**=सूक्ष्म **भवतीं**=आप के स्वरूप का, **अनुदिनं**=नित्य, **यः**=जो, **अन्तः**=मन में, **स्मरति**=स्मरण करता है, **तं**=उस भक्त के, **स्मर प्रतिमम्**=कामदेव जैसी, **अप्रतिम**=उपमारहित, **स्वरूपा**=स्वरूपवाली, **मृगदृशः**=शिव की शक्तियाँ, भृशम्=अत्यधिक, **अर्चयन्ति**=पूजती हैं।

अर्थः—लाल रंग में रंगे हुये कमल के तार की जैसे आप की सूक्ष्मस्वरूप का जो भक्त नित्य स्मरण करता है, उस भक्त को कामदेव की जैसी सुन्दर शक्तियाँ (योगनियाँ) पूजती हैं।

टिप्पणी—माँ के स्वरूप के बारे में उपनिषदों का कहना है—
"अणोरणीयान्-महतो महीयान्" वह आत्मा अथवा 'संवित्' शक्ति सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा महान् से महान् है। हिरण्मयेन-पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् तत्त्वं पूषन्-अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये। उस सत्यस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये इन ढक्कणरूपी योगनियों अष्टसिद्धियों को हटा लीजिये-उनको ठुकराने पर ही साधक उस परमेश्वर को प्राप्त करता है।

स्तुमस्त्वां वाचम्-अव्यक्तां
हिम-कुन्देन्दु-रोचिषम्।
कदम्ब-मालां विभ्राणाम्
आपाद-तल-लम्बिनीम् (11)

अन्वय-शब्दार्थ

हिम=बर्फ, **कुन्द**=कुन्द पुष्प, **इन्दु**=चन्द्रमा जैसे, **रोचिषम्**=दीप्तिवाले, **आपादतल**=नीचे पाँवों तक, **लम्बिनीम्**=लटकती हुई, **कदम्बमालां, विभ्राणाम्**=कदम्बमाला=धारण की हुई, अव्यक्तां=सूक्ष्म, **वाचम्**=वाणी (परा वाणी) के रूप में, त्वाम्=**तुम्हारी**, स्तुम:=स्तुति करते हैं।

अर्थ:—बर्फ, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा जैसी दीप्ति वाले, नीचे पाँवों तक लटकती हुई कदम्बमाला को धारण की हुई परावाणी के रूप में माँ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

टिप्पणी—वाणियाँ चार हैं—वैखरी मध्यमा पश्यन्ती और "परा" परावाणी मानिये "संवित्" अथवा पराशक्ति का नामान्तर हैं। "कदम्बमाला" कुण्डलिनी का सूचक है। वह "परावाणी" कुण्डलिनी से घेरी हुई है-जिसके "षट्दल" रूपी छ: ताले लगे हैं, वे छ: ताले खोलने पर ही, कुण्डलिनी जागृत हो जाती है, वह जब अपने स्थान से हटती है, तो साधक को "परावाणी" से मिलने का सौभाग्य मिलता है।

मूर्ध्नीन्दो: सित-पंकजा-सनगतां, प्रालेय-पाण्डु-त्विषं
वर्षन्तीम्-अमृतं सरोरुहभुवो, वक्त्रेपि रन्ध्रेपि च।
अच्छिन्ना च मनोहरा च ललिता, चाति-प्रसन्नापि च
त्वाम्-एव स्मरतां स्मरारि-दयिते! वाक् सर्वतो वल्गति (12)

अन्वय-शब्दार्थ

स्मरारि=शंकर की, **दयिते**=हे प्रियशक्ती!, **मूर्ध्नि=शून्यचक्र** (ब्रह्मरन्ध्र) में, **इन्दो**:=चन्द्रमा के जैसे, **सित**=सफेद, **पंकजासन**=कमल के आसन पर, **गतां**=बैठी हुई, **प्रालेय,** बर्फ की भांति, **पाण्डुत्विषं**=निर्मल दीप्ति वाली, **वक्त्रेपि**=मूलाधार पर, **रन्ध्र** आज्ञा चक्र के, **सरोरुहभुव**:=दोनों कमल पतों पर, **अमृतं वर्षन्तीम्**=अमृत बरसाती हुई, **त्वाम्-एव**=तुम्हारे ऐसे ही रूप का, **स्मरतां**=स्मरण करने वालों को, **अच्छिन्न**=निरर्गल, **मनोहरा**=मन को

हरने वाली, **ललिता**=सुन्दर, **अतिप्रसन्न**=निर्मल, **वाक्**=वाणी, सर्वत:=सब ओर से, **वल्गति**=प्रकट होती है।

अर्थः—हे शंकर की प्रियशक्ती! शून्य चक्र में (ब्रह्मरन्ध्र में) चन्द्रमा के जैसे सफेद निर्मल कमल के आसन पर बैठी हुई, बर्फ की भांति निर्मलदीप्ति वाली, मूलाधार और आज्ञा चक्र के दो दलों पर अमृत की वर्षा करती हुई, तुम्हारे ऐसे ही रूप का स्मरण करने वालों को निरर्गल मनोहर सुन्दर तथा निर्मलवाणियाँ सब ओर से प्रकट होती हैं।

टिप्पणी—पञ्चस्तवीकार ने पहले ही स्तव में कहा है, जिन पर माता का अनुग्रह होता है उन्हें क्या कुछ प्राप्त होता है—

"जाते तवानुग्रहे-वाचः सूक्ति-सुधारस-द्रुवमुचो निर्यान्ति वक्त्राम्बुजात्" जिस भक्त पर आप अनुग्रह करती है, उसके मुख से बिना किसी प्रयत्न के अमृतरस को टपकाती हुई उत्तम वाणियाँ निकलती हैं।

ददातीष्टान्-भोगान्-क्षपयति रिपून्-हन्ति-विपदो
दहत्याधीन्-व्याधीन्-शमयति सुखानि प्रतनुते।
हठात्-अन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्ट-विरहं
सकृत्-ध्याता देवी किम्-इव निर्-अवद्यं न कुरुते (13)

अन्वय-शब्दार्थ

सकृत्=एक ही बार, **ध्याता**=ध्यान की हुई, **किम्-इव**=क्या कुछ, **निर्-अवद्यं**=दोष रहित, **न कुरुते**=नहीं करती है, **इष्टान् भोगान्**=इष्ट भोगों को, **ददाति**=देती है, **क्षपयति रिपून्**=शत्रुओं का नाश करती है, **विपदो हन्ति**=विपदाओं का नाश करती है, **आधीन्**=मन के दुःखों को, **दहति**=जलाती है, **व्याधीन्-शमयति**=शरीर के रोगों का नाश करती है। **सुखानि**=सुखों का **प्रतनुते**=विस्तार करती है, **हठात्**=हठ से, **अन्तर्दुःख**=मन

के दु:खों को, **दलयति**=बाहर फेंकती हो, **इष्टविरहं**=प्रेमी की जुदाई, पिनष्टि=पीसती हो, दूर करती हो।

अर्थः—जो एक ही बार माँ का ध्यान करता है, माँ उस भक्त के लिये क्या कुछ अच्छाई नहीं करती है, चाहे हुये भोगों को देती है, शत्रुओं का नाश करती है विपदाओं को नष्ट करती है, मन के दु:खों को जलाती है। शरीर के रोगों का नाश करती है, सुखों का विस्तार करती है। हठ से मन के दु:खों को जड़ से उखाड़ती है, प्रेमी के वियोग को दूर करती है।

टिप्पणी—श्रीमत्-नाम प्रोच्य नारायणाख्यं
के-न प्राप्ता-वांछितं पापिनापि। मुकुन्दमाला।

नारायण (अथवा माता) के नामोच्चारण करने से किन पापियों ने भी अपनी-अपनी इच्छानुसार फल नहीं पाया।

यस्त्वां ध्यायति वेत्ति विन्दति जप-त्यालोकते चिन्तय
त्यन्वेति प्रतिपद्यते कलयति स्तौत्या-श्रय-त्यर्चति।
यश्च त्र्यम्बक-वल्लभे! तव गुणान्-आकर्ण-य-त्यादरात्
तस्य श्रीर्न-गृहात्-अपैति विजयस्तस्याग्रतो धावति (14)

अन्वय-शब्दार्थ

त्र्यम्बक-वलभे=(अग्नि-सूर्य-चन्द्रमा) तीन नेत्रों वाली शंकर की प्यारी शक्ति। **यः**=जो, **त्वां**=तुम्हें, **ध्यायति**=ध्यान करता है, **वेत्ति**=जानता है, **विन्दति**=प्राप्त करता हे, **जपति**=जप करता है, **आलोकते**=देखता है, **चिन्तयति**=चिन्तन करता है, **अन्वेति**=पीछे-पीछे चलता है, **प्रतिपद्यते**=शरण में आता है, **कलयति**=विमर्श करता है, **स्तौति**=स्तुति करता है, **आश्रयति**=आसरा लेता है, **अर्चति**=पूजा करता हे, **यः**=जो, **तव गुणान्**=तुम्हारे गुणों को, **आदरात्**=आदर से, **आकर्णयति**=सुनता है,

तस्य=उसके, **गृहात्**=घर से, **श्रीः**=लक्ष्मी, **न अपैति**=भागती नहीं है, **विजयः**=सफलता, **तस्याग्रतो**=उसके आगे आगे, **धावति**=दौड़ती है।

अर्थः—हे माता! जो भक्त आप का ध्यान करता है, जो आप को जानता है, जो आप को पाने का प्रयत्न करता है, आप का जप करता है, आप को देखता है, आपका चिन्तन करता है, आप का अनुसरण करता है, आपकी शरण में आता है, आपका विमर्श करता है, स्तुति करता है, आपका आसरा लेता है, आप की पूजा करता है, आपके गुण आदर से सुनता है। उसके घर से लक्ष्मी भागती नहीं है, सफलता उसके आगे आगे दौड़ती है।

टिप्पणी—सभी इन्द्रियों को भजन कीर्तन श्रवण मनन निदध्यासन में व्यस्त रखने ही में मनुष्य जीवन की सफलता है। श्री राजा चन्द्रशेख मुकुन्दमाला में कहते है।—

जिह्वे कीर्तय केशवं मुररिपुं चेतोभज श्रीधरं, पाणिद्वन्द्वसमर्चया-च्युत कथाः श्रोत्रद्वय त्वं श्रृणु।
कृष्णं लोकय लोचन-द्वय हरे-र्गच्छांघ्रि-युग्मालयं जिघ्र घ्राण मुकुन्दप ादतुलसी मूर्धन्-नमाधोक्षजम्।।

अर्थः—हे जिह्वा! तुम केशव का कीर्तन करते रहो, हे मन! कृष्ण का भजन करते रहो। हे दो हाथो नारायण की पूजा करते रहो, हे दो कानो! नारायण की कथायें सुनते रहो, हे दो नेत्रो! भगवान् को ही देखते रहो, हे दो पैरो! भगवान् के मन्दिर में जाया करो, हे नासिका! भगवान् के पादों में अर्पित तुलसी सूँघते रहो, हे सिर! भगवान् कृष्ण को नमस्कार करते रहो।

किं किं दुःखं दनुजदलिनि! क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्तिः कुलकमलिनि! ख्याप्यते न स्तुतायाम्।
का का सिद्धिः सुरवर-नुते! प्राप्यते नार्चितायां
कं कं योगं त्वयि न चिन्वते, चित्तम्-आलम्बितायाम् (15)

अन्वय-शब्दार्थ

दनुजदलिनि! राक्षसों को संहार करने वाली माता, **किं किं दुःखं**=वह कौन कौन सा दुख है, **त्वयि स्मृतायां**=जो तुम्हारे स्मरण करने पर, **न क्षीयते**=नष्ट नहीं होता है, **कुल कमलिनि**=जगत् रूपी कमल को विकसित करने वाली

माँ! **का कीर्तिः**=वह कौन कौन सी कीर्ति है, **त्वयि स्तुतायां**=आप की स्तुति करने पर, **न ख्याप्यते**=प्रसिद्ध नहीं होती है, **सुरवरनुते**=हे इन्द्र से प्रणाम की हुई माता!, **का का सिद्धिः**=वह कौन कौन सी सिद्धि है, **त्वयि अर्चितायां**=आप की पूजा करने पर, **न प्राप्यते**=प्राप्त नहीं होती है, **कं कं योगं**=वह कौन कौन सा योग है, जो **त्वयि**=आप पर, **चित्तम्-आलम्बिताया** मन लगाने पर, **न चिन्वते**=सिद्ध नहीं होता है।

अर्थ—राक्षसों का संहार करने वाली माता! वह कौन-कौन सा दुःख है जो आप के स्मरण करने पर नष्ट नहीं होता है, जगत् रूपी कमल को विकसित करने वाली माता, वह कौन-कौन सी कीर्ति है, जो आप की स्तुति करने पर फैलती नहीं, हे इन्द्र से प्रणाम की हुई माता! वह कौन कौन सी सिद्धि है जो आप की पूजा करने पर प्राप्त नहीं होती है, वह कौन सा योग है जो आप में मन लगाने पर सिद्ध नहीं होता है।

टिप्पणी—या च स्मृता तत्-क्षणं एव हन्ति नः
सवीपदो भक्ति-विनम्र-मूर्तिभिः।।दुर्गा सप्त०।।

जो माता, भक्ति से विनम्र-मनुष्यों द्वारा स्मरण की जाने पर तत्काल ही सम्पूर्ण-विपत्तियों का नाश कर देती है।

ये देवि! दुर्धर-कृतान्त-मुखान्तरस्था
ये कालि! कालघन-पाश-नितान्त बद्धाः
ये चण्डि! चण्ड-गुरु-कल्मष-सिन्धुमग्ना
स्तान् पासि मोचयसि तारयसि-स्मृतैव (16)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि! हे माता! **ये**=जो, **दुर्धर**=कठिन, **कृतान्त**=महाकाल के, **मुखान्तरस्था**=मुख में पड़े हूँ, **ये**=जो, **कालि**=हे काली, **कालघनपाश**=महाकाल के घनी

फांसियों से, **नितान्त**=ज़ोर से, **बद्धा**=बांधे हुये हैं, **ये** जो, **चण्डे** चराचर-जगत् को प्रकाशित करने वाली, **चण्ड**=कठिन **गुरु**=भारी, **कल्मष**=पापों के, **सिन्धु**=समुद्र में, **मग्ना**=डूबे हुये हैं, **तान्** उनको, **पासि**=जन्ममरण से बचाती हो, **मोचयसि**=काल से छुटकारा दिलाती हो, **तारयसि**=तारती हो, **स्मृतैव**=स्मरणमात्र से ही।

अर्थः–हे देवी! जो मनुष्य कठिन महाकाल के मुख में पड़े हुये हूँ जो महाकाल के घने फाँसियों से ज़ोर से बंधे हुये हूँ, हे चण्डी भगवती, जो कठिन भारी पापों के समुद्र में डूबे हुये हूँ उनको आप स्मरण मात्र से ही क्रमशः रक्षा करती हो, छुटकारा दिलाती हो और तारती हो।

टिप्पणी–माँ! आप के स्मरण मात्र से महाकाल के मुख में पड़े हुओं की रक्षा होती है, महाकाल की फाँसियों से बंधे हुओं को छुटकारा मिलता है, पापों के समुद्र में डूबे हुये किनारे लगते हैं।

लक्ष्मी-वशीकरण-चूर्ण-सहोदराणि
त्वत्-पाद-पंकजरजांसि चिरं जयन्ति।
यानि प्रणाम-मिलितानि नृनां ललाटे
लुम्पंन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि (17)

अन्वय-शब्दार्थ

लक्ष्मीवशीकरण=लक्ष्मी को वश करने के लिये, **चूर्ण**=चूर्णरूपी औषधि के जो, **सहोदराणि**=सगे भाई हैं, **त्वत्**=तुम्हारे, **पाद पंकजरजांसि**=चरणकमलों के धूलि के कण, **चिरं जयन्ति**=चिरकाल तक जयशील रहे, **यानि**=जो धूलि के कण, **नृणां ललाटे**=भक्तों के माथे पर **प्रणाम मिलितानि**=प्रणाम से लगे हुए, **दैव लिखितानि**=प्रारब्ध में लिखे हुये, **दुरक्षराणि**=बुरे अक्षरों को **लुम्पन्ति** मिटाते हैं।

अर्थ—लक्ष्मी को वश करने के लिये चूर्ण रूपी औषधि के जो सगे भाई हैं (यानी समानशक्ति रखते हैं) आपके चरण कमलों के धूलि के कण-वे चिरकाल तक जयशील रहें। उनको जय-जयकार हो, माता के चरणों के प्रणाम से-भक्तों के माथे पर लगे हुए वे धूलिकण ललाट पर लिखे हुये बुरे अक्षरों को मिटाते हैं।

टिप्पणी-लिखितमपि ललाटे प्रोझितुं कः समर्थः"
जो ललाट में लिखा हुआ है उसको कौन टाल सकता है, केवल माता ही ऐसी समर्थशाली है जो केवल प्रणाम मात्र से ही ललाट पर लिखे दुरक्षरों को चुन चुन कर मिटाती है, जैसे कि इसी श्लोक में पँचस्तवी कार की घोषणा है।

रे मूढः! किम्-अयं वृथैव तपसा, कायः परिक्लिश्यते
यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः किम्-इतरे रिक्ती क्रियन्ते गृहाः
भक्तिश्चेत्-अविनाशिनी भगवती पादद्वयी सेव्यताम्।
उन्निद्राम्बु-रुहात-पत्रसुभगा, लक्ष्मीः पुरोधावति (18)

अन्वय-शब्दार्थ

रे मूढ़ः=हे मूर्खो, **किं**=क्यों, **तपसा**=बिना ज्ञान के, हठ योग से, **कायः**=शरीर को, **वृथैव**=निरर्थ ही **परिक्लिश्यते**=कष्ट देते हो, **वा**=अथवा, **इतरे**=कुछ पुरुष, **बहुदक्षिणैः**=बड़ी दक्षिणा वाले, **यज्ञैः**=यज्ञों से, **रिक्ती**=खाली, **क्रियन्ते**=करते हैं, **गृहाः**=घरों को, **भक्ति**=भक्ति **चेत्** अगर, **अविनाशनी**=दृढ अथवा निरन्तर रहने वाली है, और **भगवती**=जगदम्बा के **पादद्वयी**=दोनों पादों की, **सेव्यताम्**=सेवा कीजिये, **उन्नि-द्राम्बुरुहात पत्र सुभगा**=खिले हुये कमल के पत्रों से शोभायमान लक्ष्मी **पुरः**=आगे आगे, **धावति**=दौड़ती है।

अर्थः—हे मूर्खो क्यों बिना ज्ञान के तपस्या से शरीर को निरर्थक कष्ट देते हैं, कुछ पुरुष बड़ी दक्षिणा वाले यज्ञों से घरों को खाली

करते हैं, यदि आपको दृढ अथवा निन्तर रहने वाली भक्ति है तो जगदम्बा के दोनों पादों की सेवा कीजिये, ऐसा करने से खिले हुये कमल के पत्रों से शोभायमान लक्ष्मी आगे दौड़ती है, ऐसे भक्त को लक्ष्मी के पीछे दौड़ना नहीं पड़ता है।

टिप्पणी–"ध्रुवं कर्तुः श्रद्धा विधुरम्-अभिचराय हि मरवाः" भक्ति हीन यज्ञ यजमान के नाश के लिये होते हैं। ऊपर के श्लोक के आधार से बिना भक्ति के तपस्या निष्फल है, बड़े बड़े यज्ञ करने से क्या लाभ जिस यज्ञ में भक्ति न हो।

भक्ति कैसे होती है? वाल्मीकी रामायण से-

"यावत् शरीरादिषु माययात्मधी-तवत् विधेयो विधिवाद-कर्मणाम्"

जब तक अनन्य भक्ति उत्पन्न न हो तब तक वेदोक्त यज्ञादि करना आवश्यक है, भक्ति के उत्पन्न करने में यज्ञादि साधक हैं बाधक नहीं।

वेदोक्तयज्ञादिकों से अन्तःकरण की शुद्धि होती है-अन्तःकरण के शुद्ध होने पर ही भक्ति उत्पन्न होती है।

याचे न कंचन न कंचन वञ्चयामि
सेवे न कंचन निरस्त-समस्त-दैन्यः।
श्लक्ष्णं वसे मधुरम्-अद्मि भजे वरस्त्री
देवी हृदि स्फुरति मे कुलकाम-धेनुः (19)

अन्वय-शब्दार्थ

निरस्त समस्त-दैन्यः=मैं सभी दीनताओं से रहित हूँ, **याचे न कंचन**=किसी से कुछ मांगता नहीं हूँ, **सेवे न कञ्चन**=किसी की गुलामी नहीं करता हूँ, **श्लक्ष्णं वसे**=बारीक रेशमी वस्त्र पहनता हूँ, **मधुरम्**=मीठा भोजन, **अद्मि**=खाता हूँ, **वरस्त्री भजे**=उत्तम पति व्रत्ता स्त्री मुझे प्राप्त है, ऐसा क्यों? जबकि **कुलकामधेनुः**=सभी कामनाओं को पूरी करने वाली, माँ **मे** मेरे, **हृदि**-हृदय में, **स्फुरति**=विकसित है।

अर्थः—मैं सभी दीनताओं से रहित हूँ, किसी से कुछ मांगता नहीं

हूँ। बारीक रेशमी वस्त्र पहनता हूँ, स्वादिष्ट भोजन खाता हूँ, उत्तम पतिव्रता स्त्री मुझे प्राप्त है। ऐसा क्यों माँ? सभी कामनाओं को पूरी करने वाली आप जब मेरे हृदय में विकसित हैं।

टिप्पणी–शिवस्तोत्रावली से–

ईश्वरोऽहम्-अहम्-एव-रूपवान् पण्डितोस्मि सुभगोस्मि कोपरः।
मत्-समोस्ति जगतीति शेभते मानिता त्वत्-अनुरागिण: परभ्।।

अर्थः–मैं पूर्ण रूप मे स्वतन्त्र हूँ, मैं सुन्दरता का भण्डार हूँ, मैं ज्ञानवान् हूँ मैं सौभाग्यवान् हूँ, इस जगत् में मेरे समान कौन है-यह स्वात्माभिमान उनको ही शोभा देता हे, माता! जिनके हृदय में आप विकसित हैं।

शब्द-ब्रह्म-मयि! स्वच्छे! देवि! त्रिपुर-सुन्दरि!
यथा-शक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरि (20)

अन्वय-शब्दार्थ

शब्द-ब्रह्म-मयि!=शब्द-ब्रह्म-रूपिणी माता!, **स्वच्छे**=निर्मल, **त्रिपुर सुन्दरि**=तीनों अवस्थाओं में "संवित" रूप से ठहरी हुई माता, **यथा शक्ति जपं पूजां**=शक्ति के अनुसार किया हुआ जप तथा पूजा, **गृहाण**=स्वीकार कीजिये।

अर्थ–शब्द-ब्रह्म-रूप! तीनों अवस्थाओं में ठहरी हुई, निर्मल, त्रिपुर सुन्दरी, माता, मेरी यथा शक्ति किया हुआ जप पूजा स्वीकार कीजिये।

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः
अवस्था शम्भवी मेस्तु प्रसन्नोस्तु गुरुः सदा (21)

अन्वय-शब्दार्थ

सर्वे=सभी, **साधकाः**=माता के साक्षात्कार के लिये प्रयत्नशील, **नन्दन्तु**=सन्तुष्ट

रहें, **विदूषकाः**=दोष दृष्टिवाले दुष्ट **विनश्यन्तु**=नष्ट हो जायें अथवा उनको सत् बुद्धि मिले, **मे**=मेरी, **शाम्भवी अवस्था अस्तु**=अभेदमय अवस्था हो, **प्रसन्नस्तु गुरुः सदा**=गुरु मुझ पर सदा प्रसन्न रहे।

अर्थ—सभी साधक सन्तुष्ट रहें, दोष दृष्टि वाले अथवा दुष्ट नष्ट हो जाये, मुझे अभेदमय अवस्था प्राप्त हो, गुरु मुझ पर प्रसन्न रहे।

टिप्पणी—शाम्भवी अवस्था

यह अवस्था श्रोत्रिय ब्राह्मनिष्ठ गुरुकृपा से बिना किसी अभ्यास या प्रयत्न से प्राप्त होती है।

दर्शनात् पापशमनी जपात्-मृत्युविनाशिनी
पूजिता दुःख-दौर्भाग्य हरा त्रिपुर-सुन्दरी (22)

अन्वय-शब्दार्थ

त्रिपुर सुन्दरी=त्रिपुरा भगवती, **दर्शनात्**=दर्शन से, **पापशमनी**=पापों का नाश करती है, **जपात्**=जप से, **मृत्युविनाशिनी**=मृत्यु का नाश करती है, **पूजिता**=पूजा की गई, **दुःख-दौर्भाग्य हरा**=दुःख और दुर्भाग्य को हटाती है।

अर्थः—त्रिपुरा भगवती दर्शन से पापों का नाश करती है, जप से मृत्यु का नाश करती है, पूजा की गई दुःख और दुर्भाग्य को हटाती है।

नमामि यामिनीनाथ-लेखा-लङ्कृत-कुन्तलाम्
भवानीं भवसन्ताप-निर्वापण-सुधानदीम् (23)

अन्वय-शब्दार्थ

यामिनीनाथ=चन्द्रमा की, **लेखा**=कला से, **अलंकृत**=शोभित, **कुन्तलाम्**=केशों वाली, **भव**=संसार के, **संताप**=दुःखों को, **निर्वापण**=हटाने के लिये, **सुधानदी** अमृतनदी, **भवानीं**=माता को, **नमामि**=प्रणाम करता हूँ।

अर्थः—चन्द्रकला से शोभित केशों वाली, संसार के दु:खों को हटाने के लिये अमृतनदी रूप माता भवानी को प्रणाम करता हूँ।

मन्त्रहीनं क्रिया हीनं विधिहीनं च यत्‌गतम्।
त्वया तत्-क्षम्यतां देवि! कृपया परमेश्वरि (24)।।

अन्वय-शब्दार्थ

देवि!=हे माता, **मन्त्रहीनं**=मंत्ररहित, **क्रिया हीनं**=क्रिया रहित, **विधिहीनं**=विधि रहित, यत् **गतम्**=जो कुछ भी हुआ, **परमेश्वरि**=हे परमेश्वर की शक्ति, **त्वया**=आप, **तत्**=उस सबके लिये, **कृपया**=कृपा से, **क्षम्यताम्**=क्षमा करे।

अर्थः—हे माता मन्त्र रहित, क्रिया रहित, विधि रहित जो कुछ भी मुझ से हुआ, हे परमेश्वरि आप उस सबके लिये क्षमा करें।

इति पञ्चस्तव्यां घटस्तवः

अथ पञ्चस्तव्यां–अम्बस्तवःचुतर्थः

यामा-मनन्ति मुनयः प्रकृतिं पुराणीं
विद्येति यां श्रुतिरहस्यविदो वदन्ति
ताम्-अर्ध-पल्लवित-शंकर-रूप-मुद्रां
देवीम्-अनन्य-शरणः शरणं प्रपद्ये (1)

अन्वय-शब्दार्थ

याम्-जिसको, **मुनयः**=मुनि, **पुराणीं**=अनादि काल से चली आई, **प्रकृतिं**=तीन गुणों की साम्यावस्था, **श्रुतिरहस्य विदः**=वेदों के रहस्य जानने वाले, **विद्या**=यथार्थ ज्ञान, **वदन्ति**=कहते हैं, **ताम्**=उसी, **अर्ध**=आधे शरीर के देने से, **पल्लवित**=विकसित हुई, **शंकर रूप मुद्रां=साकार शंकर रूप वाली, देवीं**=देवी को, **अनन्यशरणः**=दूसरे किसी देवी देवता के शरण में न गया हुआ, **तां शरणं प्रपद्ये**=आप की शरण में आया हूँ।

अर्थः—जिसको वेदों के रहस्य को जानने वाले मुनि अनादि प्रकृति तथा विद्या नाम से कहते हैं, उसी आप के आधे शरीर के देने से विकसित हुई शंकर रूप वाली देवी को मैं दूसरे किसी देवी देवता के शरण में न गया हुआ शरण में आया हूँ।

टिप्पणी—प्रकृति का अर्थ है, चराचर सृष्टि को रचाने वाली शक्ति, माया। "मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। भगवद्गीता

पुराणी=पुराण शब्द का अर्थ है, प्राथमिक अथवा आदि, पुरा नवं=पुराना होता हुआ भी नया, "माया या प्रकृति" पुरानी होती हुई भी नई ही होती है।

विद्या=यथार्थज्ञान, अभेद दृष्टि का होना, शुद्ध विद्या।

अम्ब! स्तवेषु तव तावत्-अकर्तृकाणि
कुण्ठी भवन्ति वचसाम्-अपि गुम्फनानि।
डिम्बस्य मे स्तुतिर्-असौ-असमञ्जसापि
वात्सल्य-निघ्न-हृदयां-भवतीं धिनोति (2)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता! **तव-स्तवेषु**=आप की स्तुति करने में **तावत्**=तो, **अकर्तृकाणि**=परमेश्वर के बिना जिन का कोई बनाने वाला नहीं, **वचसां गुम्फनानि**=वेदों की ऋचायें भी, **कुण्ठी भवन्ति**=रुक जाती हैं, वर्णन करने में समर्थ नहीं है, ऐसा होने पर भी, **मे**=मुझ, **डिम्बस्य**=छोटे मूर्ख बालक की, **असौ**=यह, **असमञ्जसापि**=असमीचीन भी **वात्सल्य**=भक्तों के प्रेम से, **निघ्नहृदयां**=द्रवित हृदयवाली, **भवतीं**=आपको, **धिनोति**=प्रभावित करती है।

अर्थः—हे माता! आप की स्तुति करने में, परमेश्वर की बनाई हुई वेद की ऋचायें भी रुक जाती हैं-यानी आपका वर्णन करने में समर्थ नहीं है, ऐसा होने पर भी मुझ छोटे अबोध बालक की, यह असमीचीन स्तुति भक्ति रूपी प्रेम से द्रवित हृदय वाली आपको प्रभावित करती है।

टिप्पणी—स्कन्दपुराण से—"श्रुतिश्च भीता यं वक्ति, किं तस्मात् परम"
अर्थ—वेद भी जिस "संवित्" का वर्णन करने में भयभीत होते हैं तो इससे बढ़कर और क्या कहें—परन्तु तो भी भक्त कहे बिना रह नहीं सकता है। "सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई"
जौ बालक कहि तोतरिबाता, मुदित होहिं सुनि गुरु पितु माता (रामचरितमानस)

व्योमेति बिन्दुर्-इति नाद इतीन्दुलेखा
रूपेति वाक्-भवतनूः-इति मातृकेति।
निष्यन्दमान-सुखबोध-सुधास्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम् (3)

अन्वय-शब्दार्थ

व्योम-इति=आकाश स्वरूप वाली (सर्वत्र व्याप्त) **बिन्दुः** इति=ब्रह्मरूप वाली, **नाद इति**=नाद रूप, **इन्दु लेखा**=चन्द्रकला रूप, **वाक्-भवतनू**=सरस्वती रूप, **मातृका**=मातृका (अ से क्ष तक) रूप वाली, **निष्यन्दमान सुखबोधसुधास्वरूपा**=द्रवीभूत-आनन्द-ज्ञान तथा अमृतरूप वाली, **भाग्यवतां जनानां**=सौभाग्यवाले भक्तों के, **मनसि**=मन में **विद्योतसे**=प्रकट होती हो।

अर्थ—हे माँ! आप भाग्यशाली भक्तों के मन में, व्योम (आकाश) रूप में, बिन्दु (ब्रह्म) के रूप में, नाद रूप में, चन्द्रकलारूप में, सरस्वती रूप में, मातृका रूप में, द्रवीभूत, आनन्द ज्ञान, अमृत रूप वाली ऐसे ही स्वरूपों में प्रकट होती हो।

टिप्पणी—व्योम, बिन्दुः कुण्डलिनी, नाद, इन्दुलेखा, परावाक्, मातृका-यह सभी शब्द 'संवित् के नामान्तर' हैं।

नाद-शरीर के अन्दर स्वाभाविकरूप से अनाहत ध्वनि चलती रहती हैं, ध्वनि प्रायः दो वस्तुओं के टकराने से उत्पन्न होती है, परन्तु शरीर में उसके विप्रीत बिना किसी टकराव के यह ध्वनि (नाद) निरन्तर होती रहती है, यह ध्वनि हम अपने ही कानों से योगाभ्यास के द्वारा सुनने में समर्थ होते हैं, यह ध्वनि शब्द ब्रह्म का ही व्यापार है।

आविर्भवत्-पुलक-सन्ततिभिः शरीरैः
निष्यन्दमान-सलिलैः-नयनैश्च नित्यम्।
वाग्भिश्च गद्गद-पदाभिर्-उपासते ये
पादौ तवाम्ब! हृदयेषु त एव धन्याः (4)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता, **आविर्भवत्**=प्रकट हुये, **पुलक सन्ततिभि:**=रोमांचों की पंक्तियों से युक्त, **शरीरै:**=शरीरों से, **निष्यन्दमान**=बहते हुये, **सलिलै:**=अश्रुओं से भरे **नयनै:**=नेत्रों से, **च**=और, **नित्यं**=लगातार, **वाक्भि:**=वाणियों से, **गद्गद-पदाभि:**=हिचकियाँ युक्त, शब्दों से, **ये**=जो भक्त, **तव पादौ**=आपके चरणों को, **हृदयेषु**=हृदय में, **उपासते**=उपासना करते हैं (ध्यान करते हैं), **ते एव**=वे ही भक्त, **धन्या:**=प्रशंसनीय हैं।

अर्थ—हे माता! प्रकट हुये, रोमांचों की पंक्तियों से युक्त शरीरों से, बहते हुये अश्रुओं से भरे हुये नेत्रों से, हिचकियों से युक्त शब्दों से जो भक्त आपके चरणों की निरन्तर उपासना करते हैं, वे भक्त भाग्यशाली है-(प्रशंसनीय है)

टिप्पणी—"सौख्यम्-एष-भवत: समागम:" शि॰ स्तो॰
हे माता जब भक्त को आप का समागम होता है, अथवा निरन्तर जो आप के ध्यान में मग्न होता है, उसकी दशा एक ब्रह्मनिष्ठ योगी की जैसी होती है, जैसा कि शिव महिम्नस्तोत्र में वर्णित है प्रहृष्यत्-रोमाण:, प्रमद-सलिल-संगित-दृश
अर्थ-योगी को वह परम तत्व देख कर हर्ष से रोम पुलकित हो जाते हैं और नेत्रों से आनन्द अश्रु बहते हैं।

वक्त्रं यत्-उद्यतम्-अभिष्टुतये भवत्या-
स्तुभ्यं नमो यत्-अपि देवि! शिर: करोति।
चेतश्च यत्-त्वयि परायणम्-अम्ब तानि
कस्यापि कैर्-अपि भवन्ति तपो-विशेषै: (5)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि! हे माता, **यत् वक्त्रं**=जो मुख, **भवत्या:**=आप की **अभिष्टतुये**=बार बार स्तुति के लिये, **उद्यतम्**=उद्योग युक्त हो **शिर: अपि**=सिर भी, **यत्**=जो,

तुभ्यं=आप को, **नमः करोति**=नमस्कार करता है, **चेतः**=चित्त, **यत्**=जो, **त्वयि**=आप में, **परायणम्**=लगा हो, **अम्ब**=हे माता, **तानि**=यह तीनों बातें **कस्यापि**=किसी को ही, **कैः-अपि**=किन्हीं, **तपो विशेषैः**=किये हुये उत्तम तपों से, **भवन्ति**=प्राप्त होती है।

अर्थ—हे माता, जो मुख आप की बार बार स्तुति के लिये, उद्योग युक्त हो, जो सिर आप को नमस्कार करता है, जो मन आप में, लगा हो, यह तीनों बातें स्तुति, प्रणाम तथा आप का ध्यान किसी विरले को ही उत्त्म तपों से प्राप्त होती हैं।

टिप्पणी—सा वाक् यया तस्य गुणान् गृणीते, करौ च तत्कर्म, मनश्च।।
अर्थ—वही वाणी सफल है, जो परमात्मा का गुण गाती है, हाथ भी वही सफल हैं जो आप के काम में ही लगे हूँ, मन भी वही है जो आप का ध्यान करे, सिर भी वही है जो आप को बार बार प्रणाम करे।

मूलाल-वाल-कुहरात्-उदिता भवानि
निर्भिद्य-षट्-सरसिजानि तडित्-लतेव।
भूयोपि तत्र विशसि ध्रुव-मण्डलेन्दु
निष्यन्दमान-परमामृत-तोय रूपा (6)

अन्वय-शब्दार्थ

भवानि=हे माता, आप, **मूलालवाल**=मूलाधार रूपी **आलवालात्**=(छोटी सी क्यारी जो पानी से भरी होगी) काश्मीरी में सगडूर, **कुहरात्**=गुफा से, **उदिता**=उदय में आई हुई, **तड़ित् लतेव**=बिजली की कड़क जैसी, **षड्सरिसिजानि**=छः कमलों को, **निर्भिद्य**=भेदन करती हुई अथवा विकसित करती हुई, **ध्रुवमण्डलेन्दु**=सहस्रार में जो अमृत से भरपूर, **इन्दु**=क्षमा कला (चन्द्रमा की सौलहवीं कला) है, **निष्यन्दमान**=उसको प्रवाहित करती हुई, **परामृत तोयरूपा**=चित्त=अमृत से भरपूर, **तत्रापि** उसी मूलाधार में, विशिसि=प्रवेश करती हो।

अर्थ—हे माता! आप मूलाधाररूपी गुफा से बिजली की कड़क की भांति उदय में आई हुई, छ: कमलों को भेदन करती हुई, सहस्त्रार में पहुँच कर वहाँ स्थित (अमा कला) जो अमृत से भरपूर होती है उसको द्रवित करती हुई यानी प्रवाहित-करती हुई, उसी अपने स्थान भूत मूलाधार में फिर से प्रवेश करती हो।

टिप्पणी—षट्चक्र-स्थान् शिवान् भित्वा देवी गच्छति निष्कलम् (स्वतन्त्र तन्त्र)
अर्थ—षट्चक्रों में स्थित छ: शिवों का भेदन (विकसित) कर देवी निष्कल निर्गुण ब्रह्म पर पहुँचती है।

षड् चक्र:—(1) मूलाधार चक्र (जननेन्द्रिय में दो अंगुल नीचे गुदा से दो अंगुल ऊपर चार दल वाला

(2) **स्वाधिष्ठान चक्र**, जो-लिंग के सामने है (6 दल)

(3) **मणिपूर चक्र**, नाभि के सामने (10 दल)

(4) **अनाहत चक्र**, हृदय के सामने (12 दल)

(5) **विशुद्धि चक्र**, हृदय के सामने (16 दल)

(6) **आज्ञा चक्र**, भ्रुवों के मध्य में (दो दल)

दग्धं यदा मदनम्-एकम्-अनेकधा-ते
मुग्धः कटाक्षविधिर-अंकुरयां-चकार।
धत्ते तदा-प्रभृति देवि! ललाट नेत्रं
सत्यं ह्रियेव मुकलीं कृतम्-इन्दुमौलिः (7)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि!=हे देवी, **यदा**=जब, **ते**=आपकी, **मुग्धः**=मोहित करने वाली, **कटाक्ष विधिः**=तिरच्छी नेत्र दृष्टि, **अनेकधा**=नाना प्रकार से, **एकं**=अकेले, **दग्धं**=जले हुये, मदनम्=कामदेव को, **अंकुरयाञ्चकार**=अंकुर निकालने लगी, **तदाप्रभृति**=तब से, **इन्दु** मौलिः=शंकर भगवान् ने, **सत्यं**=सचमुच, **ललाट नेत्रं**=ललाट का नेत्र, **ह्रिया** इव=शर्म के मारे ही,

मुकली-कृतम्=अर्धनिमीलित रूप में रखा है।

अर्थ–हे देवी जब तुम्हारी मोहित करने वाली तिरछी नेत्र दृष्टि से, जले हुये काम देव को फिर से अंकुर निकलने लगा, ऐसा देख कर शर्म के मारे ही शंकर भगवान् ने तीसरा नेत्र अर्धनिमीलित रूप में रखा है।

टिप्पणी–"कपाल-नेत्रान्तर-लब्धमार्गैः ज्योतिः प्रवाहैर्-उदितैः शिरस्तः।" कुमार संभव शंकर के तीसरे नेत्र के अग्नि से जलकर कामदेव भस्म हुआ था, तब से कामदेव का नाम पड़ा था "स्मर" परन्तु ऐसा होने पर भी संसार में कामदेव का प्रभाव बना हुआ है-ऐसा देख कर ही शर्म के मारे शंकर का तीसरा नेत्र अर्धनिमीलित है।

अज्ञात-सम्भवम्-अनाकलिता-न्ववायं
भिक्षुं कपालिनम्-अवाससम्-अद्वितीयम्
पूर्वं-करग्रहण-मंगलतो भवत्याः
शम्भुं क एव बुबुधे गिरि-राज-कन्ये (8)

अन्वय-शबदार्थ

गिरिराज कन्ये!=हे पार्वती, **अज्ञातसंभवम्**=जिस के माता पिता का ज्ञान न हो, **अनाकलित-अन्ववायं**=जिन के वंश का कोई ज्ञान नहीं, **भिक्षुं**=भिक्षा करने वाले, **कपालिनं**=कपालधारी, **अवाससम्**=वस्त्र रहित (नग्न) **अद्वितीयम्**=जिसके समान कोई नहीं है, **शम्भुं**=शंकर को **भवत्याः** आपके, **कर ग्रहण मंगलतः**=पाणिग्रहण से, **पूर्वं**=पहले **क एव**=कौन, **बुबुधे**=जानता था।

अर्थः–हे पार्वती! जिसके माता पिता का कोई ज्ञान नहीं है, जिसका कोई वंश नहीं, भिक्षा से जो अपना जीवन निर्वाह करता है, जो कपाल की माला को धारण करता है, जो नग्न रहता है, जो अद्वितीय है, ऐसे शंकर को आपके पाणिग्रहण से पहले कौन जानता था।

टिप्पणी–'वपुर्विरूपाक्षम्-अलक्षजन्मत:, दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु
वरेषु यत् बालमृगाक्षि! मृग्यते, किमस्ति तत् व्यस्तमपि त्रिलोचने"कुमार संभत
अर्थ–ब्रह्मचारी रूप में शंकर पार्वती से पूछता है–हे पार्वती! एक उत्तम वर में जो गुण होने चाहिये, क्या उन में से कोई गुण उस शंकर में है जिसके लिये तुम तपस्या करती हो, जिसके विकृत नेत्र हैं, जिसके जन्म का कोई ज्ञान नहीं, जिसके पास तन ढाँपन के लिये वस्त्र नहीं है।
पार्वती कहती है–"न सन्ति यथार्थ्यविद: पिनाकिन:" शंकर क्या है, वह कितना शक्तिशाली है सभी नहीं जानते हैं।"

चरमाम्बरं च शव-भस्म-विलेपनं च
भिक्षाटनं च नटनं च परेत-भूमौ।
वेताल-संहति-परिग्रहता च शम्भो:
शोभां बिभर्ति गिरिजे! तव साहचर्यात् (9)

अन्वय-शब्दार्थ

शम्भो:=शम्भु का, **चरमाम्बरं**=मृगशाला जिसका वस्त्र है, **शवभस्म**=मुर्दे का भस्म, **विलेपनं**=शरीर पर मलने की वस्तु है, **भिक्षाटनं**=भिक्षा के लिये घूमना, **नटनं** च **परेतभूमौ**=प्रेतों की भूमि में नाचाना, **वेताल संहति**=वेतालों का समूह **परिग्रहता**=जिसका परिवार है, **गिरिजे**=हे पार्वती, **तव**=आपके, **साहचर्यात्**=साथ चलने से अथवा पाणिग्रहण से **शोभां बिभर्ति**=शोभा को धारण करता है।

अर्थ:–मृगशाला जिस का वस्त्र है, शव का भस्म जो शरीर पर मलता है, भिक्षा के लिये जो घूमता फिरता है, प्रेतों की भूमि में जो नाचता है, वेतालों का समूह जिसका परिवार है, हे पार्वती! ऐसा होने पर भी आप के सम्पर्क से शंकर शोभा को धारण करता है।

टिप्पणी–चिताभस्मालेपो गरलं-अशनं दिक्पटधरो जटाधारी कण्ठे भुजग पतिहारी पशुपति:।
कपाली भूतेशो भजति-जगत्-ईशैक-पदवीं

भवानि त्वत्-पाणिग्रहण-परिपाटी-फलमिदम्।। देवीस्त्रोत

अर्थ–हे भवानी-जो शंकर अपने अंगों में चित्ता की राख मलते हैं, विष ही जिन का भोजन है, जो नग्न ही रहते हैं, सिर पर जटा, कण्ठ में वासुकि को हार रूप में धारण करते हैं, जिनके हाथ में भिक्षापात्र कपाल है, ऐसा होने पर भी पशुपति शंकर ने जगत् ईश की पदवी प्राप्त की है, इस का क्या कारण है? ऐसा महत्व उन को कैसे मिला, हे माता! यह आपके पाणिग्रहण का ही फल है।

कल्पोप-संहरण केलिषु पाण्डितानि
चण्डानि खण्डपरशोर्-अपि ताण्डवानि।
आलोकनेन तव कोमलितानि मातर्!
लास्यात्मना पिरणमन्ति जगत्-विभ्त्यै (10)

अन्वय-शब्दार्थ

मात:=हे माता, **कल्प**=युगों के, **उपसंहरण**=नाश करने की, **केलिषु**=क्रीडाओं में, **खण्डपरशो:**=शंकर के, **चण्डानि**=भयंकर, **ताण्डवानि**=नृत्य, **पाण्डितानि**=निपुण हैं, **तव**=आपके, **लास्यात्मना**=प्रेम से भरे हुये, **आलोकनेन**=दृष्टि से, **कोमलितानि**=कोमल बने हुये, **जगत्-विभूत्यै**=जगत् के ऐश्वर्य के लिये, **परिणमन्ति**=परिणत हो जाते हैं।

अर्थ–हे माता, युगों के नाश करने की क्रीडाओं में निपुण, शंकर के भयंकर नृत्य, आपकी प्रेमभरी दृष्टि से कोमल बन कर जगत् के ऐश्वर्य के लिये परिणत हो जाते हैं।

टिप्पणी–जैसे एक माली पौधों अथवा वृक्षों की टहनियाँ उस वृक्ष के फलने फूलने की भावना से काटता है-ऐसे ही शंकर चराचर सृष्टि का नाश करता है–परन्तु वह नाश नई सृष्टि की भावना से ही होता है-यद्यपि शंकर का काम सृष्टि का नाश करना है परन्तु सृष्टि को फिर से सुसज्जित रूप में प्रकट करना। माता! आप की अनुग्रह-दृष्टि का ही परिणाम है

जन्तोर्-अपश्चिमतनोः सति कर्मसाम्ये
निशेष-पाशपटल-च्छिदुरा-निमेषात्
कल्याणि! दैशिक-कटाक्ष-समाश्रयेण
कारुण्यतो भवसि शाम्भव-वेददीक्षा (11)

अन्वय-शब्दार्थ

कल्याणि!=हे कल्याणरूपिणी माँ! **अपश्चिम तनोः जन्तोः**=जीवन मुक्त बनने वाले मनुष्य को, **कर्मसाम्ये**=पुण्य और पापों की साम्य अवस्था, **सति**=होने पर, **कारुण्यतो**=आप के अनुग्रह से, **दैशिक**=सद्गुरु की, कटाक्ष=अनुग्रह की दृष्टि का, **समाश्रयेण**=सहारा मिलने पर, **निमेषात्**=बिना किसी परिश्रम के (क्षण मात्र में) **पाशपटल**=पाशों के समूह को (अथवा तीन मलों को) **च्छिदुरा**=काटने वाली, **शाम्भव वेद दीक्षा** (अभेदमयी) शाम्भवी परा अवस्था, दीक्षा देने वाली **भवसि**=तुम बनती हो।

अर्थ–हे कल्याणरूपिणी माता! मुक्त होने वाले मनुष्य को, पुण्य ओर पापों की साम्य अवस्था होने पर, आपके अनुग्रह से, सद्गुरु की अनुग्रह दृष्टि का सहारा मिलने पर बिना किसी परिश्रम के (क्षण मात्र में) पाशों के समूह (अथवा तीन मलों को) को काटने वाली वेद विध्यनुसार शाम्भवी दीक्षा देनी वाली आप ही बनती हो।

टिप्पणी–शाम्भ्व वेद दीक्षा=शम्भवी अवस्था=अभेदमयी अवस्था, यह अवस्था गुरुकृपा के बिना प्राप्त नहीं होती है, गुरु से दीक्षा लेकर ही साधक इस अवस्था को प्राप्त करता है, शिष्य की योग्यता के अनुसार दीक्षायें भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। प्रत्येक सम्प्रंदाय में गुरुदीक्षा का पृथक् पृथक् क्रम होता है–परन्तु इस श्लोक में उस दीक्षा का संकेत है, जो दीक्षा ऋषि परम्परा से वेद विध्यनुसार दी जाती है–शाम्भवी अवस्था की दीक्षा वह दीक्षा है जिसके बारे में भगवद्गीता में आता है "यत् ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव" जिस अवस्था पर पहुँचकर साधक को फिर मोह नहीं होता है।

मुक्ता विभूषणवती नव-विद्रुमाभा
यत्-चेतसि स्फुरसि तारकितेव सन्ध्या।
एकः स एव भुवनत्रय-सुन्दरीणां
कन्दर्पतां व्रजति पञ्चशरीं विनापि (12)

अन्वय-शब्दार्थ

मुक्ता=मोतियों के, **विभूषणवती**=भूषणों से सुसज्जित, **नव-विद्रुम-आभा**=नये रुद्राक्ष जैसी शोभावाली, **तारकितेव-संध्या**=तारो से भरी हुई, सन्ध्या जैसी, **यत् चेतसि**=जिस के मन में **स्फुरसि**=विकसित होती हो, **स एक एव**=वही भक्त, **भुवनत्रय-सुन्दरीणां**=तीनों लोकों की सुन्दर शक्तियों के, **पञ्चशरीं विनापि** (बाणों के बिना)=बिना किसी प्रयत्न के, **कन्दर्पंता-व्रजति**=कामदेव भाव को पहुँचता है, सभी अणिमादि सिद्धियाँ उसके वश में हो जाती हैं।

अर्थ–मोतियों के भूषणों से सुसज्जित, नये रुद्राक्ष जैसे शोभावाली, तारों से भरी हुई सन्ध्या जैसी साकार रूप वाली माँ, जिस भक्त के मन में विकसित होती है, तीनों लोकों की सुन्दर शक्तियाँ बिना किसी प्रयत्न के उस भक्त के पीछे-पीछे लुढकती हैं।

"तत्त्वं पूषन्-अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये"

ईशावास्योपनिषद् में भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता हे, हे प्रभु! अणिमादि-सिद्धियों से चमकते हुये उस ढक्कन को, जो मेरे लिये आपके साक्षात्कार करने में बाधक हैं "अपावृणु" हटा लीजिये। अणिमादिसिद्धियों में न फस कर ही साधक "शाम्भवी अवस्था" पर पहुंचने में समर्थ होता है।

ये भावयन्त्य-मृत-वाहिभिर्-अंशुजालैः।
आप्यायमान-भुवनाम्-अमृतेश्वरीं त्वाम्।
ते लंघयन्ति ननु मातर्-अलंघनीयां
ब्रह्मादिभिः सुर-वरैर्-अपि कालकक्ष्याम् (13)

अन्वय-शब्दार्थ

ये=जो भक्त, **त्वां**=तुम्हें, **अमृतवाहिभिः**=अमृतधारण किये हुये, **अंशुजलै**=किरणों के समूह से, **भुवनां**=तीन लोकों को, **आप्यायभान**=जीवनदान देने वाली, **अमृतेश्वरीं**=अमृत की स्वामिनी का **भावयन्ति**=ध्यान करते हैं। **मातः**=हे माँ, **ते**=वे भक्त, **ब्रह्मा-दिभिः**=ब्रह्मा इत्यादि, **सुरवरैः**=देवताओं से, **अलंघनीयां**=पार-करने में कठिन, **कालकक्ष्यां**=काल को भी, **लंघयन्ति**=पार करते हैं।

अर्थः—अमृतधारण किये हुये किरणों के समूह से तीन लोकों को जीवनदान देने वाली, अमृत की स्वामिनी ऐसे माता के स्वरूप का जो भक्त ध्यान करते हैं, वे ब्रह्मादि देवताओं से अलंघनीय कालकक्ष्या को पार करते हैं।

यः स्फाटिकाक्ष गुण-पुस्तक-कुण्डिकाढयां
व्याख्या-समुद्यतकरां शरत्-इन्दु-शुभ्राम्।
पद्मासनां च हृदये भवतीम्-उपास्ते
मातः स विश्व-कवि-तार्किक-चक्रवती (14)

अन्वय-शब्दार्थ

यः=जो भक्त, **स्फाटिक**=स्फटिक मणि की, **अक्षगुण**=अक्षमाला, **पुस्तक**=पुस्तक, **कुण्डिका**=कमण्डलु, **आढयां**=युक्त, **व्याख्या**=उपदेश के लिये, **समुद्यतकरां**=ऊपर-उठाये हाथ वाली, **शरत्-इन्दु**=शरद ऋतु के

चन्द्रमा जैसी, **शुभ्राम्**=निर्मल, **पद्मासनां**=कमल के आसन पर बैठी हुई, **हृदये**=हृदय में, **भवतीं**=आप की, **उपास्ते**=उपासना करते हैं, **मातः**=हे माता, **सः**=वह, **विश्व**=जगत् के, **कवि**=कवियों, **तार्किक**=तर्क करने वालों का, **चक्रवर्ती**=अग्रगण्य बनता हो।

अर्थः—एक हाथ में स्फटिक मणि की अक्षमाला, दूसरे में पुस्तक तीसरे में कमण्डलु, चौथा हाथ उपदेश के लिये ऊपर उठाया हुआ, पद्मासन पर बैठी हुई, शरत् ऋतु के चन्द्रमा जैसी निर्मल माता के ऐसे साकार रूप की जो भक्त उपासना करता है वह जगत् के कवियों तथा तार्किकों का चक्रवर्ती राजा बनता है।

टिप्पणी—साकारमूर्ति का ध्यान करने वाले साधक के लिये आवश्यक है, जिस देवी या देवता का ध्यान किया जाये-उसके गुण, ध्यान करने वाले साधक में आयें। "देवो भूत्वा देवं यजेत्" उपरि लिखित श्लोक में माँ के हाथ में "अक्षमाला" से संकेत मिलता है-हर समय इष्ट देवी देवता का स्मरण करना, पुस्तक से संकेत मिलता है-स्वाध्याय में जुटे रहने का, हाथ में कमण्डलु से तात्पर्य है-स्वाध्याय से ज्ञानरूपी अमृत एकत्रित करते रहना, उपदेश के लिये ऊपर उठाये हुये हाथ से तात्पर्य है, ज्ञान प्राप्त करके प्रचार करना। पद्मासन से तात्पर्य है जल में (संसार में) रहते हुये भी निर्मल रहना।

बर्हावतंस-युत-बर्बर-केशपाशां
गुञ्जावली-कृत-घनस्तन-हार-शोभाम्
श्यामां प्रवाल-वदनां सुकुमार-हस्तां
त्वाम्-एव नौमि शवरीं शवरस्य जायाम् (15)

अन्वय-शब्दार्थ

बर्ह=मोरपंख के, **अवतंसयुत**=ताजवाले, **बर्ब-केश-पाशां**=भूरे रंग के-केशों वाली, **गुञ्जावली**=गुंजाहारों से, **कृत**=किये हुये, **घनस्तन**=घने स्तनों पर, **हारशोभाम्**=हारों की शोभा वाली, **श्यामां**=श्यामवर्ण वाली, **प्रवालवदनां**=मूँगे जैसे लाल मुखवाली, **सुकुमार-हस्तां**=कोमल हाथों

वाली, **शवरस्य**=शिकारी बने हुये शंकर की, **जायाम्**=शक्तिरूप शवरी, **त्वामेव**=तुझे ही, **नौमि**=नमस्कार करता हूँ।

अर्थः—मोरपंख के ताज वाले, भूरे रंग के सुन्दर केशों वाली, गुंजाहारों से किये हुये, घने स्तनों पर हारों की शोभा वाली, श्यामवर्ण वाली, मूँगे जैसे लाल मुख वाली, कोमल हाथों वाली, शिकारी बने हुये शंकर की शक्ति रूप शवरी (शिकारिन) के स्वरूप को नमस्कार करता हूँ।

टिप्पणी—महाभारत में यह कथा आती है-अर्जुन पाशुपत-अस्त्र के लिये तपस्या करता है, भगवान् शंकर सन्तुष्ट हो कर उसको पाशुपत अस्त्र देते समय स्वयं शिकारी (शवर) का रूप और पार्वती शिकारिन (शवरी) का रूप धारण करती है-भक्त के लिये भगवान् क्या कुछ नहीं करता है।

अर्धेन किं नवलता ललितेन मुग्धे!
क्रीतं विभोः परुषं-अर्धं-इदं-त्वयेति।
आलीजनस्य परिहास-वचांसि मन्ये
मन्द-स्मितेन तव देवि! जडी भवन्ति (16)

अन्वय-शब्दार्थ

मुग्धे! हे पार्वती, **नवलता**-ललितेन=नई लता की भांति सुन्दर, **अर्धेन**=अपने आधे शरीर से, **विभोः**=शंकर का, **परुषम्**=कठोर (खुरदुरा), **इदं** अर्धं=आधा शरीर, **किं**=क्या, **त्वया**=तुमने, **क्रीतं**=खरीदा है, **आलीजनस्य** सखियों के, **परिहास वचांसि**=हंसी के वचन, **देवि!** हे देवी, **तव**=तुम्हारी, **मन्दस्मितेन**=मुस्कराहट से, **जड़ी भवन्ति**=जड़ हो गये, यानी सखीजन आगे कुछ बोल न सकी **मन्ये**=ऐसा मानता हूँ।

अर्थः—हे पार्वती! नई लता की भांति सुन्दर, अपने आधे शरीर से शंकर का कठोर खुरदुरा आधा! शरीर (शंकर का) आप ने क्यों

खरीदा है? सखियों के हंसी के यह वचन सुनकर पार्वती के होठों पर मुस्कराहट देख कर सखी जन मूढ जैसे हो गये।

टिप्पणी–सखियों का हास्यपूर्ण वचन सुनकर पार्वती की मुस्कराहट से सखियाँ समझ गई कि पार्वती ने यह बात मान ली, कि मुझे इस खरीद फरोख्त में घाटा ही पड़ा है, अतः सखियों ने आगे बात बड़ाई नहीं।

ब्रह्माण्ड बुद्बुद-कदम्बक संकुलोयं
मायोदधि-विविध-दुःख तरंगमालः।
आश्चर्यम्-अम्ब! झट्-इति प्रलयं प्रयाति,
त्वत्-ध्यान-सन्तति-महा-वडवा-मुखाग्नौ (17)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब! हे माता, **अयं**=यह, **ब्रह्माण्ड**=ब्रह्माण्ड रूपी, **बुद्बुद**=बुलबुलों के, **कदम्ब**=समूह से, **संकुलः**=भरा हुआ, **विविध**=नाना प्रकार के, **दुःखतरंगमालः**दुख रूपी लहरों से भरपूर, **मायोदधिः**=माया रूपी समुद्र, **त्वत्**=आप के, **ध्यान-सन्तति**=निरन्तर ध्यान रूपी, **वडवामुखाग्नौ**=वाडव अग्नि में, **झट्-इति**=क्षण मात्र में, **प्रलयं प्रयाति**=लय हो जाता है अथवा नष्ट हो जाता है, **आश्चर्यम्**=यह बड़ा ही आश्चर्य है।

अर्थः–हे माता! यह ब्रह्मण्ड रूपी बुलबुलों के समूह से भरा हुआ, नाना प्रकार के दुखरूपी लहरों से भरपूर माया रूपी समुद्र आप के निरन्तर ध्यान रूपी वाडव अग्नि में क्षणमात्र में लय हो जाता है, अथवा नष्ट हो जाता है, यह बड़ा ही आश्चर्य है।

टिप्पणी–राजा चन्द्रशेखर मुकुन्दमाला में कहते हैं–
पृथ्वी रेणुर्-अणुः पयांसि कणिका फल्गुः स्फलिंगो लघु
स्तेजो निःश्वसनं मरुत्-तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः
क्षुद्रा रुद्रपितामह-प्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुरा

दृष्टे यत्र स तावको विजयते भूमावधूतावधिः।। मुकुन्दमाला

उस परब्रह्म अथवा 'संवित्' का साक्षात्कार होने पर पृथ्वी एक धूल का कण दिखाई देता है, सारा जल छोटी बूंदों जैसे लगते हैं, सारा अग्नि छोटी चिंगारियाँ दिखाई पड़ती हैं, वायु एक सांस जैसा प्रतीत होता है, आकाश सूक्ष्मच्छेद जैसा देखने में आता है, ब्रह्मादि देवता कीड़े जैसे लगते हैं-ऐसे ही उपरि लिखित श्लोक के अनुसार माता का ध्यान करने पर ही यह विशाल जगत् तथा संसार के सभी दु:ख ऐसे नष्ट हो जाते हैं जैसे वाडवाग्नि से सागर का पानी नष्ट होता है।

दाक्षायणीति कुटलेति गुहारणीति
कात्यायीनति कमलेति कलावतीति
एका सती भगवती परमार्थतोपि
संदृश्यसे बहु विधा ननु नर्तकीव (18)

अन्वय-शब्दार्थ

परमार्थतः=सही रूप में, **भगवती**, ऐश्वर्यशालिनी माँ! **एका सती अपि**=एक ही (अद्वितीया) होने पर भी, **दाक्षयणी**=दक्षप्रजापति की पुत्री, **कुटिला**=कुण्डलिनी, **गुहारणी**=हृदय-रूपी गुहा में स्थित, **कात्यायनी**=कात्यायन ऋषि की पुत्री, **कमला**=लक्ष्मी अथवा कमल की भांति संकुचित और विकसित करने वाली, **कलावती**=पांच कलाओं की शक्तिवाली अथवा षोडषी कला स्वरूप वाली, इति ऐसे ही, **ननु** निश्चय से, नर्तकीव बहुरूपिया नाचने वाली स्त्री की भांति, **बहुविधा**=बहुत प्रकार से अनेकों रूपों में, **दृश्यसे**=देखी जाती हो।

अर्थः—हे एश्वर्यशालिनी माता! परमार्थ से एक ही स्वरूपवाली होने पर भी आपने दक्ष प्रजापति की कन्या बनकर दाक्षायणी नाम पाया, मनुष्य के शरीर में मूलाधार में साढ़े तीन वलय रूप में होने से कुटिला अथवा कुण्डलिनी नाम धारण किया, कत्य ऋषि की कन्या बन कर कात्यायनी नाम पाया, कमल की भांति (विकसित तथा संकुचित)

सृष्टि बनाने तथा लय करने वाली होने से कमला नाम धारण किया है, पंच कृत्य सृष्टि-स्थिति-संहार-तिरोधान तथा अनुग्रह इन पांच कलाओं की शक्तिवाली होने से कलावती नाम पड़ा, ऐसे ही नर्तकी की भांति आपने भिन्न-भिन्न स्वरूपों को धारण करके भिन्न-भिन्न नाम पाये हैं।

आनन्द-लक्षणम्-अनाहत नाम्नि देशे
नादात्मना परिणतं तव रूपम्-ईशे।
प्रत्यङ्-मुखेन मनसा परिचीयमानं
शंसन्ति-नेत्र-सलिलैः पुलकैश्च धन्याः (19)

अन्वय-शब्दार्थ

ईशे=हे माता, **आनन्द-लक्षणम्**=आनन्द स्वरूप, **अनाहत-नाम्नि-देश** सहस्त्र चक्र में, **नादात्मना**=शब्द के रूप में, **परिणतं**=परिणत हुआ, **तवरूपं**=आप का रूप, **प्रत्यङ्-मुखेन**=इन्द्रियों में प्रधान, **मनसा**=मन से, **परिचीयमानं**=अनुभव किया हुआ, **नेत्र सलिलैः**=अश्रुधाराओं से भरे हुये **पुलकैः**=पुलकित शरीर से, **शंसन्ति**=आप की प्रशंसा करते है, **धन्याः**=ऐसे भक्त भाग्यशाली हैं।

अर्थः—जो योगी जन सहसार चक्र में नादरूप आनन्दस्वरूप शब्द के रूप में प्रकट हुये, आप के स्वरूप का निर्मल मन रूपी (प्रधान इन्द्रियें) से अनुभव करते हैं, वे भक्त पुलकित होकर आनन्द अश्रुओं को बहाते हुये आपकी प्रशंसा करते हैं-ऐसे भक्त भाग्यशाली हैं।

टिप्पणी—"प्रत्यङ्मुखेन मनसा" प्रत्यञ्चति=चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा बाह्यविषयों को अन्दर की ओर खींचता है प्रत्यक् कहलाता है प्रत्यङ् मुखेन मनसा=प्रधान इन्द्रिय मन से। इस श्लोक में शाम्भवी अवस्था का संकेत है, साधक जब शाम्भवी अवस्था में पहुँचता है तो वह परम आनन्द का अनुभव करता है आनन्द का लक्षण है नेत्रों में आंसुओं का भर

जाना, शरीर का पुलकित होना वाणी का गद्‌गद हो जाना "आनन्दो ब्रह्मेति व्याजानात्" उपनि॰

त्वं चन्द्रिका शशिनि तिग्मरुचौ रुचिस्त्वं
त्वं चेतनासि पुरुषे पवने बलं त्वम्।
त्वं स्वादुतासि सलिले शिखिनि त्वम्-ऊष्मा
निःसारम्-एव निखिलं त्वत् ऋते यदि स्यात् (20)

अन्वय-शब्दार्थ

त्वम्=तुम, **शशिनि**=चन्द्रमा में, **चन्द्रिका**=प्रकाश हो, **त्वं**=तुम **तिग्मरुचौ**=सूर्य में, **रुचि**=दीप्ति हो, **त्वं**=तुम, **पुरुषे**=प्राणी में, **चेतना**=शक्ति हो, **त्वं**=तुम, **पवने**=वायु में **बलं**=बल हो, **त्वं**=तुम, **स्वादुतासि**=रस हो, **सलिले**=जल में, **शिखिनि**=अग्नि में, त्वं=तुम **ऊष्मा**=गर्मी हो, **निःसारम् एव**=सत्ता रहित ही है, **निखिलं**=सारा, **त्वत् ऋते**=तुम्हारे बिना, **यदि स्यात्**=यदि होगा।

अर्थः—हे माता! चन्द्रमा में चान्दनी तुम हो, सूर्य में दीप्ति तुम हो, प्राणी में चेतना तुम हो, वायु में बल तुम हो, जल में मिठास तुम हो अग्नि में गर्मी तुम हो, तुम्हारे बिना सब सार रहित है।

टिप्पणी—"ईशावास्यमिदं सर्वं, यत् किञ्च जगत्यां जगत्" उपनि॰
"जो कुछ दीखे जगत् में सब ईश्वर से ढांप, करो चैन इस त्याग से धन लालच से कांप" स्वामी रामतीर्थ

ज्योतींषि यत्-दिवि चरन्ति यत्-अन्तरिक्षं
सूते पयांसि यत्-अहि-र्धरणीं च धत्ते।
यत्-वाति-वायुर्-अनलो, यत्-उदर्चिर्-आस्ते
तत्-सर्वम्-अम्ब! तव केवलम्-आज्ञ-यैव (21)

अन्वय-शब्दार्थ

यत्=जो, **ज्योतींषि**=तारागण, **दिवि**=आकाश में, **चरन्ति**=घूमते हैं, **यत्**=जो, **अन्तरिक्षं**=आकाश, **पयांसि**=जलों को, **सूते**=उत्पन्न करते हैं, **यत्**=जो, **अहिः**=शेषनाग, **धरणी**=पृथ्वी, **धत्ते**=धारण करता है, **यत्**=जो, **वायुः**=वायु, **वाति**=चलता है, **अनलो**=अग्नि, **यत्**=जो, **उदर्चिः**=ऊँची दीप्ति वाला, **आस्ते**=होता है, **तत् सर्वम्**=वह सब, **अम्ब!** हे माता, **तव**=आप की, **केवलं**=केवल, **आज्ञयैव**=आज्ञा से ही होता है।

अर्थः—आकाश में जो तारागण घूमते हैं, आकाश जो बादलों को उत्पन्न करता है, शेषनाग जो पृथ्वी को धारण करता है, वायु जो चलता है अग्नि में जो दीप्ति प्रज्ज्वलित होती है, हे माता! यह सब आपकी ही आज्ञा से ही होता है।

टिप्पणी—भीषास्मात्-वातः पवते, भीषोदेति सूर्यः, भीषास्मात्-अग्निश्च इन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति" "तैत्तिरीयोपनिषद्"

अर्थ—उसी शक्ति के भय से वायु चलती है, उसी शक्ति के भय से सूर्य उदय होता है, उसी शक्ति के भय से, अग्नि, इन्द्र और पाँचवां मृत्यु ये सब अपना अपना कार्य करने में लगे रहते हैं।

संकोचम्-इच्छासि, यदा गिरिजे! तदानीं
वाक्-तर्कयो-स्त्वम्-असि भूमिः-अनाम-रूपा।
यद्वा विकासम्-उपयासि यदा तदानीं
त्वत् नाम रूपगणनाः सुकरी भवन्ति (22)

अन्वय-शब्दार्थ

गिरिजे! हे पार्वती! **यदा** जब, **संकोचं इच्छसि**=सृष्टि को लय करना चाहती हों, **तदानीं**=उस समय, **त्वं**=तुम, **वाक्-तर्कयोः**=वाणी और तर्क में, **अनामरूपा-भूमिः**=नामरूप से रहित अवस्था वाली, **असि**=हो,

यद्वा=नहीं तो, **यदा**=जब, **विकासम् उपयासि**=जब आप सृष्टि रूप में विकसित होती हो, **तदानीं**=तब, **त्वत् नामरूप गणना**=तुम्हारे नामरूप की गणना **सुकरी भवन्ति**=आसान हो जाती हैं।

अर्थ:—हे पार्वती! जब आप इस सृष्टि को अपने में लय करती हो उस समय आप वाणी और तर्क में नाम और रूप रहित अवस्था (निराकार रूप) वाली होती हो, जब आप सृष्टि रूप में विकसित होती है, तो आप के नामरूप की गणना आसान हो जाती हैं।

टिप्पणी—द्वे वाव ब्राह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च" बृ० उपनि०

ब्रह्म अथवा उस पराशक्ति के दो रूप हैं, मूर्त और अमूर्त, निराकार तथा साकार, अविनाशी और नाशवान्। निराकार शक्ति के बारे में श्रुति कहती है "अणोरणीयान्, महतो महीयान्" (कठ उपनिषद्) जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, महान् से भी महान् है।

साकार के विषय में वेदों का कहना है— "यस्य पृथिवी शरीरं, यस्य आप: शरीरं, यस्य अग्नि: शरीरं, यस्य अन्तरिक्षं शरीरम्, यस्य वायु: शरीरम्....।(बृ० उपनि०)

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकश यह सब तत्व उस ब्रह्म के अथवा उस पराशक्ति के शरीर हैं, अत: इस प्रत्यक्ष शरीरधारी रूप में उसको जानना आसान है।

भोगाय देवि भवतीं कृतिनः प्रणम्य
भ्रूकिंकरी-कृत-सरोजगृहा-सहस्राः
चिन्तामणि-प्रचय-कल्पित-केलि-शैले
कल्पद्रुमोपवन एव चिरं रमन्ते (23)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि!=हे ऐश्वर्य देने वाली माँ! **कृतिनः**=कई भाग्यशाली भक्तजन, **भवतीं**=आप को, **भोगाय**=ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये, **प्रणम्य**=प्रणाम करके, **भ्रूकिंकरी कृत**=भौहों के इशारों से दासियों के समान **सरोजगृहा सहस्रा**=हज़ारों लक्ष्मीवाले बनते हैं, वे ही भक्त, **चिन्तामणि प्रचय**=चिन्तामणियों के ढेरों से, **कल्पित**=बने हुये, **केलिशैले**=क्रीडा के

पर्वतों पर, **कल्पद्रुमो-पवने**=कल्पवृक्षों से बने हुये, **उपवन एव**=उपवनों में **एव** ही, **चिरं रमन्ते**=चिर काल तक रहते हैं।

अर्थः—कई भाग्यशाली भक्तजन आप को ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये प्रणाम करके भौंहों के इशारों से दासियों के समान चलने वाले हज़ारों लक्ष्मी वाले बनते हैं, उतना ही नहीं बल्कि वे भाग्यशाली भक्त चिन्तामणियों के ढेरों से बने हुये क्रीडा के पर्वतों पर कल्पवृक्षों से बने हुये बागों में चिरकाल तक रहते हैं अथवा रमन करते हैं।

टिप्पणी–"न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः" उपनि॰

धन तथा ऐश्वर्य के साधनों से मनुष्य तृप्त नहीं होता है-अतः धन-ऐश्वर्य के साधनों से शान्ति नहीं मिलती है, उपनिषदों की ऐसी घोषणा होने पर भी पञ्चस्तवीकार, हे माँ! "भोगाय देवि!" मुझे भोग के लिये धन ऐश्वर्यादि दीजिये, ऐसी प्रार्थना करता है। माता के अनुग्रह से जो धन मिलता है-वह धन अलौकि प्रकार का ही होता है जैसा कि इस श्लोक में उसका वर्णन है—वह धन उस भक्त के भौंहों के इशारों पर नाचता है, जैसे रत्नों से भरपूर पर्वत पर कल्पवृक्षों के उपवन में बिना प्रयत्न के धन मिलता है-एसे ही उस भक्त को धन प्राप्ति के लिये संघर्ष करना नहीं पड़ता है—तात्पर्य यही है माँ से प्रार्थना करने पर जिसे धन मिलता है-वह धनदास नहीं होता है बल्कि धनपति बनता है। जब तक लक्ष्मी नारायण के चरण दबाती है तब तक वह नारायण है, परन्तु जब नारायण ही लक्ष्मी के चरण दबाये तब वह नर बनता है।

मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात् सर्वज्ञ ईश्वरः अविद्यावशगस्त्वन्यः।।

अर्थ—आत्मा जब माया को अधीन रखता तो ईश्वर कहलाता है। माया के अधीन होने से आत्मा जीव कहलाता है। जहां लक्ष्मीदास बनना भोग कहलाता है, वहाँ लक्ष्मीपति बनना योग कहलाता है। भोग का योग में तब्दील होना माँ के अनुग्रह से ही सम्भव है।

हन्तु त्वमेव भवसि-त्वत्-अधीनम्-ईशे
संसार-तापम्-अखिलं दयया पशूनाम्।
वैकर्तनी-किरण-संहतिर्-एव-शक्ता
घर्मं निजं शमयितुं निजयैव दृष्ट्या (24)

अन्वय-शब्दार्थ

ईशे!=हे सर्वशक्तिमती माँ, **पशूनां**=मनुष्यों के, **अखिलं**=सभी **संसार तापं**=संसार के तीनों ताप, **त्वत्-अधीनं**=तुम्हारे आधीन है, **दयया**=दया से, **त्वमेव**=आप ही **हन्तुं**=नाश करने के लिये, **भवसि**=समर्थ हो **वैकर्तनी**=सूर्य की, **किरण संहतिः**=किरणों का समूह, **एव**=ही, **निजं घर्मं**=अपनी गर्मी को, **निजया**=अपनी ही, **वृष्ट्या**=वर्षा से, **शमयितुं**=शांत करने के लिये, **शक्ता**=समर्थ है।

अर्थः—हे सर्वशक्तिमती माँ! मनुष्यों के तीनों ताप, आप के ही अधीन है, आप ही अपने अनुग्रह से उन दुःखों का नाश करती हो, जैसे सूर्य अपने से उत्पन्न हुई गर्मी को अपनी ही उत्पन्न की हुई वृष्टि से शांत करने में समर्थ है।

टिप्पणी—तीन ताप आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक।

शक्तिः शरीरं-अधिदैवतं-अन्तरात्मा
ज्ञानं क्रिया करणं-आसन-जालं-इच्छा।
ऐश्वर्यं-आयतनं-आवरणानि च त्वं
किं तत् न यत् भवसि देवि शशांक-मौलेः (25)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि!=हे देवी!, **शाशांक-मौलेः**=शंकर की, **शक्तिः**=शक्ति **शरीर**=स्थूल शरीर, **अधिदैवतम्**=दस-इन्द्रियों की अधिष्ठातृ देवता रूप, **अन्तरात्मा**=अन्तः करण, **ज्ञानं**=ज्ञानशक्ति, **क्रिया**=क्रिया शक्ति, **करणं**=सभी कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ, **आसन-जालम्**=समाधि में उपयोगी आसन समूह, **इच्छा**=स्वतन्त्र इच्छा शक्ति, **ऐश्वर्यं**=ऐश्वर्य, **आयतनं**=आश्रय, **आवरणानि**=आणवादि तीन मल, **त्वं**=आप ही हो, **तत् किं**=वह कौन सी वस्तु है, **यत्**=जो, **त्वं**=आप, **न भवसि**=न हो।

अर्थः—हे देवी आप ही शंकर की शक्ति हो, स्थूल शरीर के रूप में आप ही हैं, शरीर की सूक्ष्म-अधिष्ठातृ-देवता रूप आप ही हैं, अन्त:करण, ज्ञानशक्ति, क्रिया शक्ति सभी कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ, समाधि के उपयोगी आसन समूह, स्वतन्त्र इच्छा शक्ति, ऐश्वर्य, आश्रय, आणवादि तीन आवरण मल आप ही हैं। वह कौन सी वस्तु जो आप नहीं हो।

टिप्पणी–"ईशावास्यं-इदं-सर्व यत् किं च जगत्यां जगत्"

भूमौ निवृत्तिर्-उदिता-पयसि-प्रतिष्ठा
विद्यानले मरुति शान्तिर्-अतीत-शान्तिः।
व्योम्नीति याः किलकलाः कलयन्ति विश्वं
तासां विदूर-तरम्-अम्ब! पदं त्वदीयम् (26)

अन्वय शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता, **भूमौ**=पृथ्वी में, **निवृत्तिः**=निवृत्ति कला, **पयसि**=जल में, **प्रतिष्ठा**=प्रतिष्ठा कला, **अनले**=अग्नि में, **विद्या**=विद्याकला **मरुति**=वायु में, **शान्ति**=शान्तिकला, **व्योम्नि**=आकाश में, **अतीतशान्ति**=शान्त्यतीत कला, **इति**=ऐसे ही, **उदिता**=उदित हुई, **किल**=निश्चय से, **कलाः**=कलायें, **विश्वं**=36 तत्त्व वाले जगत् को, **कलयन्ति**=बनाती है, **तासां**=इन कलाओं से, **त्वदीयं**=आपका, **पदं**=स्थान, **विदूर-तरम्**=बहुत ही दूर है।

अर्थः—आप पृथ्वी में निवृत्ति कला, जल में प्रतिष्ठाकला, अग्नि में विद्याकला, वायु में शान्तिकला, आकाश में=शान्त्यातीतकला, ऐसे ही पाँच कलाओं के रूप में प्रकट होकर, निश्चय से 36 कलाओं वाले जगत् की बनाती हैं-ऐसा होने पर भी माता आप का स्थान इन कलाओं से बहुत ही उत्कृष्ट है।

टिप्पणी–एको देव: सर्वभूतेषु गूढ:, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा,
कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास:, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।
उपरिलिखि वेद मन्त्र का भावार्थ भी यही है, सारी चराचर सृष्टि एक ही शक्ति से ओतप्रोत है।

यावत्पदं पद-सरोजयुगं त्वदीयं
नांगी करोति हृदयेषु जगत्-शरण्ये।
तावत्-विकल्प-जटिला: कुटिल-प्रकारा:
तर्क-ग्रहा: समयिनां प्रलयं न यान्ति (27)

अन्वय-शब्दार्थ

जगत्-शरण्ये=हे जगत् की रक्षा करने वाली माता, **यावत्**=जब तक, **त्वदीयं**=आपके, **पदसरोज**=चरणकमलों का युग जोड़ा, **हृदयेषु**=हृदयों में, **न-अंगीकरोति**=स्वीकार नहीं करते हैं=(आप के चरण कमलों को हृदय में स्थान नहीं देते हैं) **तावत्**=तब तक, **समयिनां**=भिन्न भिन्न मतवादियों के, **विकल्प जटिला:**=संकल्पविकल्प से उलझन वाले बने हुये, **कुटिल प्रकारा:**=टेड़े प्रकार के, **तर्क ग्रहा:** तर्कवितर्क रूपी ग्रहा: (उल्टे विचार) **प्रलयं**=नष्ट नहीं होते हैं।

अर्थ:–हे माता! ईश्वर के विषय में संशय बुद्धि रखने वाले, तब तक आपस में वाद विवाद तर्क वितर्क करते रहते हैं–जब तक आप के प्रकाशात्मक दोनों चरण कमलों को हृदय में स्थान नहीं देते हैं। उसके पश्चात् ही जटिल उलझन वाले बने हुये टेड़े तर्क वितर्क के विचार उन्हें नष्ट हो जाते हैं।

टिप्पणी–किं कारणं ब्रह्म कुत: स्म जात:, जीवाम केन क्वच संप्रतिष्ठा अधिष्ठिता केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्म विदो व्यवस्थाम्।। (श्वता॰ उप॰)

अर्थ–श्वेताश्वतरोपनिषद् में ऋषि आपस में ईश्वर के विषय में तर्क वितर्क करते हैं, वेदों में पढ़ा है-जगत् का कारण ब्रह्म है, वह ब्रह्म कौन है, हम सब किससे उत्पन्न हुये हैं, हमारा

मूल क्या है, किस के प्रभाव से हम जी रहे हैं, हमारे जीवन का आधार क्या है? इसी उपनिषद् में इन सभी प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट रूप में दिया गया है-परन्तु तो भी हे माता! जब तक आप की दया होगी नहीं सभी संशय सम्पूर्णतया नष्ट नहीं होते हैं।

यत्-देवयान-पितृयान-विहारम्-एके
कृत्वा मनः करणमण्डल-सार्वभौमम्।
याने निवेश्य तव कारण-पञ्चकस्य
पर्वाणि पार्वति नयन्ति निजासनत्वम् (28)

अन्वय-शब्दार्थ

पार्वति!=हे पार्वती, **यत्**=जो, **देवयान**=उत्तरायण, **पितृयान**=दक्षिणायन, **विहारम्**=स्थान, **एके**=कई भाग्यशाली साधक, **मनः**=मन को, **करणमण्डल**=सभी इन्द्रियों का, **सार्वभौमम्**=चक्रवर्ती राजा **कृत्वा**=बनाकर, **तव**=आप के, **याने**=मार्ग में, **निवेश्य**=प्रवेश करके, **कारणपंचकस्य**=पाँचों कारणों, ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, सदाशिव, ईश्वर, **पर्वाणि**=सिर, **निज**=अपना, **आसनत्वम्**=आसन, **नयन्ति**=बनाते हैं।

अर्थः—हे पार्वती, देवयान पितृयान साधक के लिये लक्ष्य तक पहुँचने के दो मार्ग है—जो साधक (देवयान पितृयान) प्रणापान के अभ्यास से सभी इन्द्रियों का राजा बनकर इन्द्रियों को नियन्त्रण में करके सुष्मणा मार्ग में प्रवेश करते हैं—अथवा आप के शरण में आते हैं उस भक्त के सामने पाँच कारण ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सदाशिव नतमस्तक हो जाते हैं।

टिप्पणी—देवयानः=प्राण, मुख अथवा नासिका द्वारा जो वायु बाहर जाता है प्राण कहलाता है। **पितृयानः**—अपान=मुख अथवा नासिका द्वारा जो वायु नीचे की ओर जाता है अपान कहलाता है।

प्राणाभ्यास की कई प्रक्रियायें हैं, जैसे वायु को बाहर निकाल कर बाहर रोकना, अन्दर भर कर अन्दर रोकना, बाहर जाने तथा अन्दर आने की इन दोनों गतियों को रोक कर प्राणापान

को स्थिर करना अथवा समगति से चलाना ऐसे ही प्राणाभ्यास की कई प्रक्रियायें है-सुयोग्य गुरु के पास रहकर इस का अभ्यास किया जाना चाहिये-यह अभ्यास पुस्तकों से पढ़कर नहीं होता है।

स्थूलासु मूर्तिषु महीप्रमुखासु मूर्तेः
कस्याश्चनापि तव वैभवम्-अम्ब यस्याः।
पत्या गिराम्-अपि न शक्यत एव वक्तुं
सा-सि स्तुता किल मयेति तितिक्षितव्यम् (29)

अन्वय-शब्दार्थ

महीप्रमुखासु=पृथ्वी, जल, वायु आकाश, अग्नि, **स्थूलासु-मूर्षिु**=स्थूल रूपों में से, **क्स्याः च न**=किसी भी, **मूर्तेः**=रूप का, **अपि**=भी, **यस्याः तव**=जिस तुम्हारे स्वरूप को, **वैभवम्**=विभव अथवा ऐश्वर्य का, **वक्तुं**=वर्णन करने के लिये, **गिरां पत्या अपि**=बृहस्पति भी, **न शक्यते**=समर्थ नहीं है, **सा**=वही स्तुति, **मया**=मुझ से, **किल**=निश्चय करके, **स्तुता असि**=स्तुति की जा रही है, **इति तितिक्षितव्यम्**=इसके लिये क्षमा कीजिये।

अर्थः—जिस जगत् ईश्वरी के स्थूलरूप पृथ्वी आदि पाँच महाभूतों में से किसी एक के स्वरूप का तथा आप के वैभव का वर्णन करने के लिये बृहस्पति भी समर्थ नहीं हैं वह मुझ से की हुई यह स्तुति माता सहन कीजिये, इस धृष्टता के लिये क्षमा कीजिये।

टिप्पणी—सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तत् अपि कहे बिनु रहा न कोई 'सा वाक् यया तस्य गुणान्-गृणीते, करौ यत् कर्मकरौ'

अर्थ—वही वाणी सफल है जो माता के गुणगान में लगी रहे-हाथ वही है सफल है जो जगत् अम्बा की अर्चनादि में लगे रहें।"

कालाग्नि कोटिरुचिम्-अम्ब षट्-अध्वशुद्धौ
आप्लावनेषु भवतीम्-अमृतौघ-वृष्टिम्।
श्यामां घनस्तन-तटां सकली कृतौ च
ध्यायन्त एव जगतां गुरवो भवन्ति (30)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब! हे माता, **षट्-अध्वशुद्धौ**=षट्-अध्वरूप भुवनों की साम्यावस्था में, **कालाग्नि-कोटि**=करोड़ों कालाग्नि रुद्रों जैसी, **रुचिम्**=प्रचण्ड दीप्तिवाली, **आप्लावनेषु**=भुवनों को सींचन करने में (संकुचित सृष्टि को प्रकट होने के योग्य बनाने में) **अमृतौघवृष्टिम्**=अमृतधाराओं की वृष्टि करने वाली, **सकली कृतौ**=सम्पूर्ण बनाने में, **घनस्तन-तटां**=भारी बने हुये (ज्ञान क्रिया रूपी स्तनों से युक्त), **श्यामां**=श्यावर्णवाली, **ध्यायन्त-एव**=ध्यान करते ही, **जगतां**=सभी भुवनों के, **गुरवोभवन्ति**=अनुशासन करने वाले बन जाते हैं।

अर्थः—हे माता!, षट्-अध्वरूप=विस्तारवाली, सृष्टि की साम्यावस्था में करोड़ों कालाग्नि जैसी प्रचण्ड दीप्तिवाली, सिंचिन करने से सृष्टि को प्रकट होने के योग्य बनाने में, अमृधाराओं से वर्षा रूपवाली, सृष्टि को सुसंस्कृत करते समय भारी बने हुये (अमृतरूपी दूध से भरे हुये) ज्ञान क्रिया रूपी स्तनों से युक्त श्यामवर्णवाली, उपरि वर्णित इन तीन स्वरूपों में जो भक्त ध्यान करते हैं, वे तत्क्षणात् सभी भुवनों के गुरु बनते हैं अथवा तीनों लोकों पर अनुशासन करते हैं।

टिप्पणी—जैसे कुम्हार घड़ा बनाने के लिये मिट्टी को कूट-कूट कर घड़ा बनाने के योग्य बनाता है, फिर मिट्टी को जल से सिंचन करता है, उसके पश्चात् चाक पर चढ़ाकर घड़े को रूप देता है, यानी सुसंस्कृत घड़ा बनने तक, घड़े को तीन अवस्थाओं में से गुजरना पड़ता है, ऐसे ही वह सर्वशक्ति माती माँ सृष्टि को तीन अवस्थाओं में परिवर्तित करते समय उपरिवर्णित तीन रूपों में प्रकट होती है।

षट्-अध्व=भुवन, तत्त्व, कला, मन्त्र, पद, वर्ण, यह तन्त्र शास्त्रों में षट् अध्व कहलाते हैं। षट्-अध्वमय जगत् शंकर का ही स्वरूप है, ऐसा तन्त्रशास्त्रों में माना गया है।

विद्यां परां कतिचित्-अम्बरम्-अम्ब के चित्
आनन्दं एव कतिचित्, कति चित् च मायाम्।
त्वां विश्वम्-आहुः-अपरे वयम्-आमनाम
साक्षात्-अपार-करुणां, गुरुमूर्तिम्-एव (31)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता, **त्वां**=तुम्हें, **कतिचित्**=कुछ भक्त, **परां विद्यां**=उत्कृष्ट विद्या, के **चित्**=कई, **अम्बरम्**=चिदाकाश रूप, **आनन्दमेव**=आनन्दरूप, **कतिचित्**=कई, **माया**=ईश्वरीय शक्ति, **अपरे**=कुछ लोग, **वयं**=हम शाक्त मतवाले, **साक्षात्**=प्रत्यक्ष **अपार-करुणां**=पार रहित-दयावाली, **गुरुमूर्ति-एव**=संदगुरु रूप, **एव**=ही, **आमनाम**=मानते हैं।

अर्थः—हे माँ! आप को कुछ भक्त परा विद्या, कई चिदाकाश रूप कई आनन्द रूप, कई माया नामों से पुकारते हैं-परन्तु हम शाक्त मतवाले, अपार दयावाली सद्गुरुमूर्तिरूप आप को मानते हैं।

कुवलय-दलनीलं बर्बर-स्निग्ध-केशं
प्रथुतर-कुचभारा-क्रान्त-कान्तावलग्नम्।
किम्-इह बहुभिर्-उक्तैः-त्वत् स्वरूपं परं नः
सकल-भुवन-मातः-सन्ततं सन्निधत्ताम् (32)

अन्वय-शब्दार्थ

सकल-भुवन-मातः=हे सभी भुवनों की माता, **कुवलय दल-नीलं**=कुवलय पुष्प के पत्र जैसा, **नीलं**=श्यामवर्ण वाला, **बर्बर**=भूरे रंग वाला, **स्निग्ध**=चिकने **केशं**=केशों वाला, **प्रथुतर**=मोटे, **कुचभार**=स्तनों के भार

से, **आक्रान्त**=घेरे हुये, **कान्त**=सुन्दर, **अवलग्नं**=कमर वाला, **इह यहाँ** **बहुभिः**=अधिक, **उक्तैः**=कहने से, **किम्**=क्या लाभ है, **त्वत्**=आप का, **परं**=उत्तम, **स्वरूपं**=साकार रूप, **नः**=हमें, **सन्ततं**=नित्यं, **सन्निधत्ताम्**=सामने रहे।

अर्थः—हे सभी भुवनों की माता, कुवलय पुष्प के पत्र जैसे श्यामवर्ण वाले, भूरे रंग के चिकने तथा कोमल केशों वाले, मोटे स्तनों के भार से घेरे हुये सुन्दर कमर वाले, आप के स्वरूप के अधिक वर्णन करने से क्या प्रयोजन, केवल यह प्रार्थना है, आप का यह सुन्दर साकार रूप हर समय हमारे सम्मुख रहे।

टिप्पणी—इस श्लोक के अन्त में पञ्चस्तवी-कार माता से प्रार्थना करता है—आप का साकार रूप हर समय हमारे सामने रहे। माँ! जब हम आपके निराकार स्वरूप के बारे में वेदों के शरण में जाते हैं, तो वद आपके सम्बन्ध में कहते हैं-"न असत्, न सत्, न सत्-असत्, न महत्, नच-अणु वह शक्ति, न असत् है-न सत् है। न सत्-असत् है, न महत् है न सूक्ष्म है, यानी वेद भी आप के बारे में डावाँडोल स्थिति में हैं, माता! मैं अब इस "सत् असत् रूपी भँवर में फंसना नहीं चाहता हूँ, बस आप मेरे सामने साकार रूप में हर समय रहें।

इति पंचस्तव्यां-अम्बस्तवः-चतुर्थः

अथ पञ्चस्तव्यां–सकलजननी स्तवःपञ्चमः

अजानन्तो यान्ति, क्षयम्–अवशम्–अन्योन्य–कलहैः
अमी–मायाग्रन्थौ, तव परिलुठन्तः समयिनः।
जगत्–मातर्–जन्म, ज्वर–भय–तमः–कौमुदि! वयं
नमस्ते कुर्वाणाः शरणम्–उपयामो भगवतीम् (1)

अन्वय-शब्दार्थ

जगत्–मातर्!=हे जगत् को उत्पन्न करने वाली माँ, **जन्म–ज्वर–भय–तमः कौमुदि!=जन्म** बार बार जन्म लेना, **ज्वर**=शरीर सम्बन्धित भिन्न भिन्न रोग, **भय**=मानसिक तथा शारीरिक भय रूपी, **तमः**=अन्धकार के लिये, **कौमुदि!**चान्दनी रूप हे माता!, **अमी**=यह सभी, **समयिनः**=भिन्न भिन्न मतवाले, **अजानन्तः**=आप के असली स्वरूप को, न जानते हुये, **अन्योन्य कलहैः**=परस्पर तर्क वितर्क के झगड़ों से, **तव**=आप के, **माया ग्रन्थौ**=मया रूपी फंदे में, **परिलुठन्तः**=लुढ़कते हुये, **अवशम्**=बेबस होकर, **क्षयं यान्ति**=नष्ट हो जाते हैं (फिर से जन्म मरण रूपी चक्र में फंसते हैं), **वयं**=हम, **ते भगवतीम्**=आप ऐश्वर्यवाली माँ को, **नमस्ते कुर्वाणाः**=नमस्कार करते हुये, **शरणम्–उपयामः**=शरण में आते हैं।

अर्थः–हे जगत् को उत्पन्न करने वाली माँ! बार–बार जन्म लेने का कष्ट, शरीर सम्बन्धित भिन्न–भिन्न रोग, मानसिक तथा शरीरिक भय रूपी अन्धकार के लिये चान्दनी रूप हे माता! यह सभी भिन्न–भिन्न मतवाले आपके असली स्वरूप को न जानते हुये परस्पर तर्क वितर्क के झगड़ों से आपके माया रूपी फंदे में लुढकते हुये

बेबस होकर नष्ट हो जाते हैं और फिर से जन्म मरण रूपी चक्र में घूमते रहते हैं-हम आप ऐश्वर्यशाली माँ को नमस्कार करते हुये शरण में आते हैं।

टिप्पणी–अविद्यायाम्-अन्तरे वर्तमाना: स्वयं धीरा: पण्डितं मन्यमाना:
जंघन्यमाना: परियन्ति मूढा:, अन्धैनैव नीयमाना यथान्धा:।। (मुण्डकोपनिषद्)
अर्थ–अविद्या में पड़े हुये अपने को धीर और पण्डित मानते हुये मूर्ख लोग ठोकरें खाते हुये फिरते हैं, जैसे अन्धे को अन्धा रास्ता दिखा रहा हो। माँ आप का असली रूप क्या है इसमें तर्क वितर्क से काम नही चलता है।
"आश्चर्यो" वक्ता, कुशलोस्य लब्धा" (ईशोपनिषद्)
यह "संवित्" क्या है उस का वर्णन करने वाला बड़ा दुर्लभ है, उसको प्राप्त करने वाला कोई सफल जीवन वाला ही होता है, उसको वही प्राप्त कर सकता है माता! जिस पर आप अनुग्रह करें।

वचस्तर्कागम्य-स्वरस-परमानन्द-विभव
प्रबोधाकाराय-द्युति-दलित-नीलोत्पलरुचे!
शिवस्याराध्याय स्तन भर-विनम्राय सततं
नमो यस्मै कस्मैचन भवतु मुग्धाय महसे (2)

अन्वय-शब्दार्थ

वचस्तर्क=वाणी और तर्क से, **अगम्य**=न जानने योग्य, **स्वरस-परमानन्द-विभव**=स्वानुभवगम्य जो परमानन्दरूपी ऐश्वर्य है, उसको, **प्रबोधाकाराय**=जागृत करने वाले, **द्युति**=सूर्य प्रकाश से, **दलित**=विकसित हुये, **नीलोत्पल**=नीलोत्पलकमल की जैसे, **रुचे**=शोभावाले, **शिवस्याराध्याय**=शंकर जिसकी आराधना करता है, **स्तन भर**=ज्ञान क्रिया रूपी स्तनों के भार से, **विनम्राय**=झुके हुये, **यस्मै कस्मैचन**=किसी अकथनीय, **मुग्धाय**=सुन्दर, **महसे**=तेज को, **सततं**=बार बार, **नमो भवतु**=नमस्कार हो।

अर्थः—वाणी और तर्क से न जानने योग्य, स्वानुभवगम्य जो परमानन्द रूपी ऐश्वर्य है, उसको जागृत करने वाले, सूर्य प्रकाश से विकसित हुये नीलोत्पल कमल की जैसे शोभावाले, शंकर भी जिसकी अराधना करता है, ज्ञान क्रिया रूप स्तनों से झुके हुये किसी अकथनीय सुन्दर तेज को बार-बार नमस्कार हो।

टिप्पणी-यतो वाचो निवर्तन्ते-अप्राप्य मनसा सह (तैत्तरी०उप०)
जहाँ से मन के साहत वाणी आदि सभी इन्द्रियाँ उस शक्ति को न पाकर लौट आती हैं **माँ के दो स्तनों का संकेत है**-ज्ञान और क्रिया अथवा सांख्य और योग। सांख्य (ज्ञानयोग) सांख्य का सिद्धान्त है, आत्मा एक तथा सर्व व्यापक हैं, जो आत्मा मेरे अन्दर है, कीट पतंग में भी वही है। योग (कर्मयोग) कर्म योग का सिद्धान्त है, कर्म करते समय सिद्धि असिद्धि, जय पराजय, हानि लाभ के विषय में मन सम रखना, माता के दोनों स्तन हर समय भक्तों को ज्ञान-क्रिया अथवा सांख्य-योग रूपी दूध की धारायें पिलाने के निमित्त झुकी रहती है।

लुठत्-गुञ्जाहार-स्तनभर-नमत्-मध्य-लतिकां
उदञ्चत्-घार्माम्भः कणगुणित-नलोत्पलरुचम्।
शिवं पार्थत्राण-प्रवण-मृगयाकार-गुणितं
शिवाम्-अन्वक्-यान्तीं शवरं-अहं-अन्वेमि-शवरीम् (3)

अन्वय-शब्दार्थ

उदञ्चत्=निकले हुये, **घर्माम्भः**=पसीने के, **कण**=बून्दों के, **गुणित**=समान बने हुये, **नीलोत्पल**=नीलकमल के, **रुचम्**=सौन्दर्य युक्त, **पार्थ**=अर्जुन की, **त्राण**=रक्षा के लिये, **प्रवण**=निपुण, **मृगयाकार**=शिकारी के रूप से , **गुणित** शोभित, **शवरं**=शिकारी, **शिवम्**=शंकर के, **अन्वक्-यान्तीं**=पीछे-पीछे दौड़ती हुई, **लुठत्**=लुढकते हुये, **गुञ्जाहार**=लाल गुञ्जफलों के हार से सुशोभित, **स्तनभर**=भारी दोनों स्तनों से, **नमत्**=झुकी हुई, **मध्यलतिकां**=कमरवाली, **शवरीं**=शिकारिन बनी हुई, **शिवां**=जगत् माता को, **अन्वेमि**=नमस्कार करता हूँ।

अर्थः—अर्जुन की रक्षा करने के लिये शिकारी रूप धारण किये हुये, शंकर के शरीर से निकले हुये गर्म पसीने के बूंद नीलकमल जैसे बने हुये जिस शंकर के शरीर पर शोभित होते थे ऐसे ही शंकर के पीछे पीछे दौड़ती हुई शिकारिन बनी हुई, लुढ़कते हुये गुंजाफलों के हारों से युक्त, स्तनों के भार से झुकी हुई कमरवाली शिवाभगवती को मैं प्रणाम करता हूँ।

टिप्पणी—अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिये, भगवान् शंकर को सन्तुष्ट करने के निमित अघोर तपस्या की, उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर भगवान् शंकर ने शिकारी का रूप धारण किया, जगत् अम्बा ने भी उपरिवर्णित श्लोक में कहे हुये रूप में शिकारिन रूप धारण किया था।

"यो यो यां यां तनुं भक्तः, श्रद्धयार्चितुं-इच्छति" (भगवद्गीता)

अर्थ-जो जो भक्त जिस जिस स्वरूप की भक्ति करता है उसकी उस श्रद्धा को उसी स्वरूप में दृढ करता हू। अर्जुन ने शस्त्रास्त्र से सुसज्जित रूप में तपस्या की भगवान् भी अर्जुन से शिकारीरूप में ही मिले। (महाभारत)

मिथः केशाकेशि-प्रधन-निधनाः-तर्क घटना
बहु-श्रद्धा-भक्ति-प्रणय-विषयाः-चाप्त-विधयः।
प्रसीद प्रत्यक्षीभव-गिरिसुते! देहि शरणं
निरालम्बं चेतः परिलुठति पारिप्लवम्-इदम् (4)

अन्वय-शब्दार्थ

तर्क घटना=तर्कवितर्क वादी, **मिथः**=आपस में, **केशाकेशि**=बालों को पकड़ कर, **प्रधन**=झगडों में, **निधनाः**=नष्ट होते हैं, **आप्तविधयः**=श्रेष्ठ परमार्थ बुद्धिवाले कई भक्त, **बहुश्रद्धा भक्ति**=श्रद्धा और भक्ति से, **प्रणयविषयाः**=विनम्र बने हुये हैं, **इदं पारिपलवं**=यह मतमतान्तर का उपद्रव, **निरालम्बं**=आश्रयरहित , **चेतः**=मनको, **परिलुठति**=विचलित करता है, भ्रमित करता है। **गिरिसुते**=हे पार्वती, **प्रसीद**=प्रसन्न होकर,

प्रत्यक्षीभव=प्रत्यक्ष रूप में दर्शन दीजिये, **देहि-शरणं**=हमें अपने शरण में लीजिये।

अर्थ:—आप का स्वरूप तर्क का विषय न होने पर भी तर्क वितर्क वादी आपस में बालों को पकड़कर नष्ट होते हैं, परन्तु दूसरे और कई भक्त जन श्रद्धा और भक्ति से, विनम्र बने हुये हैं, ऐसा यह मत मतान्तर का उपद्रव आश्रय रहित मन को भ्रमित करता है, हे पार्वती प्रसन्न होकर, प्रत्यक्ष रूप में दर्शन दीजिये तथा हमें अपने शरण में लीजिये।

टिप्पणी—"अचिन्त्या: खलु ये भावा: न तान् तर्केन योजयेत"
माता! आप का अचिन्त्य रूप तर्क की कसौटी पर परखने का विषय नहीं है। अपितु आप की शरणागति से ही आपका स्वरूप जाना जा सकता है।
"यमेव-एष-वृणुते तेन लभ्य:" (उपनिषद्) वह माँ जिस पर अनुग्रह करती है वही उनके स्वरूप को जान सकता है।

शुनां वा वह्ने-र्वा-खगपरिषदो वा यत्-अशनं
कदा केन क्वेति क्वचित्-अपि न कश्चित्-कलयति।
अमुष्मिन्-विश्वासं विजहिहि ममाह्वानय वपुषि
प्रपद्येथा-श्चेत: सकल-जननीं-एव शरणम् (5)

अन्वय-शब्दार्थ

ममचेत:=हे मेरे मन, **अमुष्मिन्-वपुषि**=इस शरीर पर **अह्नाय**=झटपट, **विश्वासं**=विश्वास, **विजिहिहि**=छोड़ दीजिये (न मालूम), **कदा**=कब, **केन**=किस कारण से, **क्व**=कहाँ पर, क्वचित्, **अपि**=कहीं भी (यह शरीर), **शुनां**=कुतों का, **वह्ने:**=अग्नि का, **वा**=अथवा, **खग-परिषद:**=पक्षियों का, **यत्**=जो, **अशनं**=भोजन, **कश्चित्**-अपि, **कोई भी**=न **कलयति**=नहीं जानता है, (इसलिये) सकल **जननीं**=जगत् माता की, **शरणं-प्रपद्येथा:**=शरण में जाइये।

अर्थः—हे मन इस शरीर पर झटपट विश्वास छोड़ दीजिये न मालूम यह शरीर कब, किस कारण से, कहाँ पर, कहीं भी कुत्तों का अग्नि का अथवा पक्षियों का भोजन बनेगा, यह कोई जानता नहीं है अतः जगत्-माता की शरण में जाइये।

टिप्पणी—कृमि, विट्, भस्म संज्ञितः। (भागवत्)
इस शरीर के तीन रूपान्तर हो सकते हैं। पृथ्वी में दबाने से कीड़े बनते हैं, पक्षियों कुत्तों आदि के खाने पर "टट्टी" बनती है, जलाने पर भस्म बनता है।

अनाद्यन्ताभेद-प्रणयरसिकापि प्रणयिनी
शिवस्यासीः-यत्-त्वं, परिणय-विधौ देवि! गृहिणी।
सवित्री भूतानाम्-अपि यत्-उदभूः शैलतनया
तत्-एतत्-संसार-प्रणयन-महानाटक-सुखम् (6)

अन्वय-शब्दार्थ

देवि=हे देवी, **अनाद्यन्ता**=आदि और अन्त रहित, **अभेद-प्रणयरसिकापि**-भेद रहित प्रेम का स्वाद करने वाली होकर भी, **प्रणयिनी**=प्रेमरूप, **यत्**=जो, **त्वं**=आप, **परिणयविधौ**=विवाह की विधि में, शिवस्य गृहिणी, **शिव की पत्नी**=आसीः थी, **यत् जो भूतानां**=जीवों की, **सवित्री**=उत्पन्न करने वाली, अपि होने पर भी, **शैल तनया**=हिमालय की पुत्री रूप में, **उत्-अभूः**=उत्पन्न हुई, **तत्-एतत्**=वही यह सब संसार जगत्, **प्रणयन**-जगत् के=प्रेम के **महानाटक**, **सुखम्**=महान् नाटक का सुख है।

अर्थः—हे देवी! आप आदि और अन्तरहित, अथाह असीम प्रेम का स्वादन करने वाली होकर भी, प्रेम रूप विवाह की विधि में शंकर की पत्नी बनी थी, प्राणियों को उत्पन्न करने वाली होने पर भी, आप हिमायल की पुत्री रूप में उत्पन्न हुई, यह सब संसार के प्रेम के महानाटक के सुख का संकेत हैं!

टिप्पणी–प्रेम ही माता के अनुग्रह प्राप्त करने का एक साधन है, पार्वती के शंकर की अर्धाङ्गिनी बनने तथा हिमालय की पुत्री बनने के नाटक से गृहस्थी जीवन की श्रेष्ठता का संकेत मिलता है, गृहस्थाश्रम "प्रेम" सीखने की एक पाठशाला है, गृहस्थ में पुत्रधन पदार्थादि से जो प्रेम किया जाता है वह मोह कहलाता है, वही प्रेम जब बुज़ुर्गों (वृद्धों) विशेषतया माता पिता से किया जाता है तो श्रद्धा कहलाती है, वही जब ईश्वर से अथवा जगदम्बा से जोड़ा जाता है तो भक्ति कहलाती है, भक्ति ही माँ से मिलाने का मुख्य साधन है। (ईश्वरानुरक्तिर्भक्ति:)

ब्रुवन्त्येके तत्त्वं भगवति! सत्-अन्ये विदुर्-असत्
परे मात:! प्राहु: तव सत्-असत्-अन्ये सुकवय:।
परे नैतत्-सर्वं सम्-अभिदधते देवि! सुधिय:
तत्-एतत्-त्वत् माया, विलसितम्-अशेषं ननु शिवे (7)

अन्वय-शब्दार्थ

भगवति!=हे ऐश्वर्यशालिनी माँ! **एके**=कुछ लोग, **तव तत्वं**=आपके स्वरूप को "**सत्**" सत्स्वरूप **ब्रुवन्ति**=कहते हैं, **अन्ये**=कुछ लोग, **असत्**=असत् रूप, **विदु:**=जानते हैं, **परे**=कुछ लोग, **मात:**=हे माँ, **सत्-असत्**=दोनों सत् रूप, असत् रूप, **प्राहु:**=कहते हैं, **परे**=कई, **सुकवय:**=विद्वान्, **नैतत्-सर्वं**=सत्, असत्, सत्असत् तीनों में से कुछ नहीं है ऐसा हैं। **समभिदधते**=कहते हैं, देवि! शिवे! हे माता, **तत्-एतत्**-अशेषं यह सब कुछ, **ननु**=निश्चय से ही, **त्वत्-माया विलसितम्**=आप की माया का ही विलास है।।

टिप्पणी–नैव वाचा, न मनसा, प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा
अस्ति-इति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तत्-उपलभ्यते।। (कठोपनिषद्)
वह संवित् रूपा माँ वाणी आदि इन्द्रियों से प्राप्त नहीं की जा सकती है परन्तु वह है अवश्य, जिसको उस शक्ति पर विश्वास नहीं है उसको वह कैसे मिल सकती है।
सत्-एव सौम्य-इदमग्र आसीत्, असत्-एवसौम्य इदम्-अग्र आसीत्
अस्ति-इति-उपलब्धव्य: (वह परमात्मा अथवा पराशक्ति अवश्य है। उपनिषद्)

तडत्-कोटि-ज्योतिः, द्युति-दलित षड्ग्रन्थि-गहनं
प्रविष्टं स्वाधारं पुनर्-अपि सुधावृष्टि-वपुषा।
किम्-अप्यष्टा-त्रिंशत्-किरण-सकली भूतं-अनिशं
भजे धाम श्यामं, कुचभरनतं बर्बर-कचम् (8)

अन्वय-शब्दार्थ

तडित्-कोटि-ज्योतिः=करोड़ों बिजलियों की, **द्युति**=दीप्तियों से, दलित-विकसित हुये, **षड्ग्रन्थि-गहनं**=षड् चक्रों (षड्कमलों) का जंगल, पुनः **अपि**=फिर से, **सुधावृष्टि-वपुषा**=अमृतवर्षा करते हुये, **स्वाधारं**=मूलाधार में, **प्रविष्टं**=प्रविष्ट हुये, **किमपि**=किसी अद्भुत, **अष्टात्रिंशत्**=आठतीस, **किरण सकली भूतं**=किरणों से पूर्ण, **श्यामं**=श्याम वर्ण वाले, **कुचभर नतं**=ज्ञान किया रूप स्तनों से झुके हुये, **बर्बरकचं**=भूरे चमकीले केशवाले, **धाम**=तेज को, **अनिशं**=निरन्तर **भजे**=नमस्कार करता हूँ।

अर्थः—मूलाधार से निकल कर सहस्रार की ओर चढ़ते समय करोड़ों बिजलियों की दीप्तियों से विकसित किये हुये छः कमलों वाले, फिर से नीचे उतरते हुये मूलाधार में प्रविष्ट होते समय अमृतवर्षा करते हुये अठतीस किरण पुंज से युक्त, श्यामवर्ण वाले ज्ञान क्रिया रूपी स्तनों से झुके हुये भूरे रंग वाले चमकीले केशों से युक्त अद्भुत उस तेज को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

टिप्पणी—उस अद्भुत तेज के बारे में श्वेताश्वतरोपनिषद् में ऋषि कहता है—"वेदाहं-एतं-पुरुषं महान्तं-आदित्यवर्णं-तमसः परस्तात्"

अर्थ—उस परमधाम को मैंने जाना, जो सूर्य की भांति स्वयं प्रकाश स्वरूप है, "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" उस परमतेज का साक्षात्कार किये बिना परमपद प्राप्ति के लिये कोई दूसरा मार्ग नहीं है। कलायें=36 (सूर्य की 12, चन्द्रमा की 16 अग्नि की 10=38)

चतुष्पत्रान्तः षड्-दल-भग-पुटान्त-स्त्रिवलय
स्फुरत्-विद्यत्-वह्नि, द्युमणि-नियुताभ-द्युतियुते!
षट्-अश्रं भित्त्वादौ, दशदलम्-अथ द्वादश दलं
कलाश्रं च द्वयश्रं गतवति! नमस्ते गिरिसुते! (9)

अन्वय-शब्दार्थ

चतुष्पत्रान्तः=चार पतों वाले कमल (मूलाधार चक्र) में से निकल कर **षड्दल**=छः पतों वाले (स्वाधिष्ठान चक्र) **भगपुटान्तः**=दो त्रिकोणों में ठहरी हुई, **त्रिवलय**=तीनघेरों वाली, **स्फुरत्**=चमकते हुये, **विद्युत्**=बिजली, **वह्नि**=अग्नि, **द्युमणि**=सूर्य जैसे, **नियुत**=अनन्त, **आभ**=प्रकाश, **द्युतियुते!**=तेजवाली कुण्डलिनी स्वरूप वाली हे माता!, **आदौ**=पहले, षट् **अश्रं**=छः दलात्मक कमल को (स्वाधिष्ठान चक्र) **भित्वा**=विकसित करके, **दशदलं**=मणिपूरक, **द्वादशदलं** (अनाहत चक्र) **कलाश्रं**=16 पते वाले (विशुद्धाख्यचक्र), **द्वयं**=दो पते वाले (आज्ञाचक्र) **गतिवति**=विकसित करने वाली (अथवा प्रवेश करने वाली, कुण्डलिनी स्वरूपवाली) **गिरिसुते**=हे माता, नमस्ते=आप को बार-बार नमस्कार हो।

अर्थः—चार पत्तो वाले (मूलाधार चक्र) से निकल कर छः दलों वाले (स्वाधिष्ठान चक्र) के दो तिकोणों में ठहरी हुई, तीन घेरों वाली, चमकते हुये बिजली अग्नि सूर्य जैसे अनन्त तेजवाली, है कुण्डलिनी स्वरूप वाली माता! आप पहले छः दलात्मक कमल को (स्वाधिष्ठान चक्र) (भित्त्वा) विकसित करके, दशदल (मणिपूरक) द्वादश दल (अनाहत चक्र) 16 पत्ते वाले कमल (विशुद्धाख्यचक्र) दो पत्ते वाले (आज्ञाचक्र) कमल को विकसित करने वाली अथवा प्रवेश करने वाली कुण्डलिनी स्वरूप वाली, हे माता आपको बार-बार नमस्कार है।

टिप्पणी–ब्रह्माण्ड में जो विश्वव्यापिनी विद्युत्-शक्ति (ऊर्जाशक्ति) है वही मानव पिण्ड में कुण्डलिनी के रूप में ठहरी है, जो कुण्डलिनी प्रकाश से भी तेज गतिवाली है। प्रकाश प्रति सैंकंड 25 हज़ार मील की गति से चलता है, कुण्डलिनी शक्ति उससे भी अधिक तेज गतिवाली है, यह कुण्डलिनी मनुष्य के शरीर में एक गुप्त तिजोरी है।

कुलं केचित्-प्राहु-र्वपुर्-अकुलं-अन्ये-तव-बुधाः
परे तत्-सम्भेदं सम्-अभिदधते कौलं-अपरे।
चतुर्णां-अप्येषां-उपरि-किम्-अपि प्राहुर्-अपरे
महामाये! तत्त्वं तव कथम्-अमी-निश्चिनुमहे (10)

अन्वय-शब्दार्थ

महामाये=महामाया भगवती!, **केचित्**=कई लोग, **तव-वपुः**=आप के स्वरूप को, **कुलं**=विश्वरूप (शक्ति), **प्राहुः**=कहते हैं, **अन्ये बुधाः**=कई विद्वान्, **अकुलं**=विश्वोत्तीर्ण (शिव) **परे**=कुछ लोग, **तत् सम्भेदं**=कुलाकुल रूप (शिव शक्तिरूप, **अपरे**=इन से भी भिन्न कई विद्वान्, **अकुलं**=विश्वोत्तीर्ण (शिव) **मन्ये**=मानते हैं, **ऐषां**=इन, **चतुर्णां**-अपि=इन चारों से भी, **उपरि**=उत्कुष्ट, **किमपि**=कुछ अलौकिक स्वरूप वाली, **प्राहुः**=कहते हैं, **तव तत्त्वं**=आप के स्वरूप को **अमी**=यह ऊपर कहे हुये, **कथं**=कैसे, **निश्चनुमहे**=निश्चित रूप से जाने।

अर्थः–हे महामाया भगवती! कई लोग आप के स्वरूप को कुल (विश्वरूप शक्ति) कहते हैं, कई विद्वान् अकुल (विश्वोत्तीर्ण शिव) मानते हैं। कुछ लोग कुलाकुल रूप (शिवशक्तिरूप) कहते हैं, इनसे भी भिन्न कई लोग कुल नाम से कहते हैं, कुछ विद्वान् इन चारों से भी उत्कृष्ट अलौकिक स्वरूप वाली नाम से पुकारते हैं–ऊपर कहे हुये स्वरूपों को ध्यान में रखते हुये आपके असली स्वरूप को कैसे हम निश्चित रूप से जानें।

टिप्पणी–आश्चर्यवत् पश्यति कश्चत्-एनं, आश्चर्यवत्-वदति तथैव चान्य:
आश्चर्यवत्-चैवम्-अन्य: श्रृणोति, श्रुत्वा प्येनं वेद न चैव कश्चित्। (भगवद्गीता)
अर्थ–कोई उस "आत्मा" अथवा "संवित्" की ओर आश्चर्य पूर्ण दृष्टि से देखता है, कोई दूसरा इसका आश्चर्य पूर्ण वर्णन करता है, और कोई इसका वर्णन आश्चर्य से सुनता है, परन्तु सुनकर भी इसको कोई जानता नहीं है।

षड्-अध्वारण्यानीं प्रलय-रविकोटि-प्रतिरुचा
रुचा भस्मीकृत्य स्वपद-कमल-प्रह्व-शिरसाम्।
वितन्वानः शैवं किमपि वपुः-इन्दीवर-रुचिः
कुचाभ्याम्-आनम्रः शिवपुरुषाकारो विजयते (11)

अन्वय-शब्दार्थ

प्रलय-रवि-कोटि-प्रति-रुचा=प्रलयकाल के करोड़ों सूर्यों के समान तेज से, **षट्-अध्वः**=छः अध्वरूप, **अरण्यानीं**=जंगल को **भस्मी कृत्य**=जला कर, **स्वपद कमल प्रह्व-शिरसाम्**=आप के चरण कमलों में झुके हुये भक्तों के, **शैवंवपुः**=शिव का परमधामात्मक स्वरूप, **वितन्वानः**=प्रकट करता हुआ, **इन्दीवररुचिः**=इन्दीवरफूल जैसी दीप्तिवाला, **कुचाभ्यां आनम्रः**=ज्ञान क्रिया रूप स्तनों के बोझ से झुका हुआ, **शिव परुषा कारः**=शिव के शक्ति रूप स्वरूप को जय जयकार हो।

अर्थः–प्रलयकाल के करोड़ों सूर्य के समान तेज से आप के चरण कमलों में झुके हुये मस्तकवाले भक्तों के छः अध्वरूप जंगल को जलाकर शिव का परमधामात्मक प्रकाश प्रकट करता हुआ, ज्ञान क्रिया रूप कुचों से झुका हुआ शिव का परमधामात्मक प्रकाश प्रकट करता हुआ, ज्ञान क्रिया रूप कुचों से झुका हुआ ऐसे ही शिव के शक्ति स्वरूप को जय जयकार हो।

टिप्पणी–षडध्वः-भुवन, तत्त्व, कला, मन्त्र, पद और वर्ण ये तन्त्रशास्त्र में षडध्व नाम से प्रसिद्ध है-यह सारा जगत् इसी "षडध्व" से व्याप्त है, योगी इसी भावना का अभ्यास करता हुआ-अन्ततः इसी में लय हो जाता है। (तंत्राशास्त्रों से)

परमधामात्मक प्रकाश के बारे में उपनिषदों में आता है

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं, नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयम्-अग्निः।
तम्-एव भान्तम्-अनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वम्-इदं-विभाति (कठोपनिषद्)

अर्थः–माता के उस परधामात्मक प्रकाश के सामने यह सूर्य प्रकाशित नहीं होता है–उस प्रकाश के सामने सूर्य खद्योत जैसा प्रतीत होता है।

अतः साधक इस श्लोक के अन्त में शिव की उस शक्ति को जय जयकार से ही अपने को कृतकृत्य मानता है।

प्रकाशानन्दभ्याम्-अविदितचरीं मध्यपदवीं
प्रविश्यैतत्-द्वन्द्वं, रविशाशि समाख्यं कवलयन्।
प्रविश्योर्ध्वं नादं, लय-दहन-भस्मी-कृतकुलः
प्रसादात्-ते-जन्तुः, शिवम्-अकुलम-अम्ब! प्रविशति(12)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता, **अविदितचरीं**=पहले न जानी हुई, **मध्यपदवीं**=सुष्मणा मार्ग में, **प्रकाशानन्दाभ्यां**=साधना (क्रिया) तथा ज्ञान से, **प्रविश्य**=प्रवेश कर, **रविशशि समाख्यं**=प्राण और अपानरूपी, **द्वन्द्वं**=जोड़े को, **कवलयन्**=ग्रास करता हुआ, **लय**=समाधि के, **दहन**=अग्नि से, **भस्मीकृतकुलः**=बाह्य जगत् को जलाकर, **ऊर्ध्वनादं**=सहस्रार में, **जन्तुः**=साधक **ते प्रसादात्**=तुम्हारे अनुग्रह से, **अकुलम्-शिवं**=विश्वतीर्ण शिवधाम में, प्रविशिति=प्रवेश करता है।

अर्थः–हे माता पहले (किसी भी जन्म में) न जाने हुये सुष्मणा मार्ग में साधना तथा ज्ञान से प्रवेश कर, प्राण अपानरूपी जोड़े को ग्रास करता हुआ समाधि के अग्नि से बाह्य जगत् को जला कर

अन्तर्मुख होकर साधक सहस्रार में आपके अनुग्रह से विश्वोतीर्ण परम शिवात्मक धाम में प्रवेश करता है।

टिप्पणी–तम्-अक्रतुः पश्यति वीतशोकः

धातुप्रसादात् महिमानम्-आत्मन: (कठोपनिषद्)

कामना-रहित बाह्यजगत् को भूला हुआ चिन्ता रहित कोई विरला साधक ही उस ब्रह्म अथवा माँ के अनुग्रह से परमशिवात्मक धाम को देखता है।

प्रियंगु-श्यामांगीम्-अरुणतरवासः किसलयां
समुन्मीलन्-मुक्ताफल-बहुल-नेपथ्य-कुसमाम्।
स्तन-द्वन्द्व-स्फार-स्तवक-नमितां कल्पलतिकां
सकृत्-ध्यायन्त-स्त्वां दधति शिवचिन्ता-मणिपदम् (13)

अन्वय-शब्दार्थ

कल्पलतिकां=कल्पलतिकारूप जिस माँ का, **सकृत्**=एक ही बार **ध्यायन्तः**=ध्यान करते हैं, जिस कल्पलता रूप माता के **प्रियंगु**=के जैसे **श्यामांगीम्**=श्याम अंग है, **अरुणतरवासः**=लालवस्त्र **किसलयां**=जिस के बाल पल्लव हैं, **समुन्मीलन्**=विकसित चमकते हुये, **मुक्ता फल**=मोती फल (जिस कल्पलता के फल हैं), **नेपथ्य**=वेश-भूषणादि जिसके, **कसुमाम्**=फूल हैं, **स्तन द्वन्द्व**=ज्ञान क्रिया रूपी दो स्तनों का, **स्फार**=विकास, **स्तवक**=जिस के फूल के दो गुच्छों से **नमितां**=झुकी हुई, वे भक्त, **शिवचिन्तामणिपदं**=शिवधाम को, दधिति प्राप्त करते हैं।

अर्थः—कल्पलता रूप माता के साकाररूप का जिस के अंग प्रियंगुलता के समान श्यामवर्ण के हैं, लालवस्त्र जिस के बालपल्लव हैं, विकसित चमकते हुये मोती, जिस कल्पलता के फल है, वेशभूषणादि जिसके फूल हैं, ज्ञान क्रिया रूपी दो स्तनों फूलों के गुच्छों से झुकी हुई ऐसे ही स्वरूपवाली माता का जो ध्यान करते

हैं, वे शिव धाम को प्राप्त करते हैं।

टिप्पणी–अव्यक्त उपासना, योगाभ्यास, कुण्डलिनी जाग्रण आदि, देहधारियों के लिये कष्ट साध्य हैं-जैसा कि भगवद्गीता में श्री कृष्णभगवान् अर्जुन से कहते हैं अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिर्-अवाप्यते, अव्यक्त की प्राप्ति बहुत ही कष्ट से होती है। पञ्चस्तवीकार ने अव्यक्त उपासना के जहाँ भिन्न भिन्न क्रम बतायें हैं वहाँ साकार उपासना को भी विशेष महत्त्व दिया है। उपरिलिखित श्लोक उसी साकार उपासना का एक उदाहरण है।

षड्-आधारा-वर्तैः, अपरिमित-मन्त्रोर्मि-पटलैः
चलन्-मुद्राफेनैः बहुविध-लसत्-दैवत-झषैः
क्रम-स्त्रोतोभिः-त्वं वहसि, परनादामृत-नदीं
भवानि! प्रत्यग्र शिव-चित्-अमृताब्धि-प्रणयिनी (14)

अन्वय-शब्दार्थ

प्रत्यग्र=नित्यनवीन, **शिवचित्-अमृताब्धि**=शिवरूप चैतन्य अमृत समुद्र में, **प्रणयिनी**=मिलाने वाली, **षड्-आधारा वर्तै**=षट्-चक्र रूप भँवरों वाली, **अपरिमित**=सीमारहित, **मन्त्रोर्मि**=मन्त्ररूपी लहरों के, **पटलैः**=समूह से युक्त, **चलन्-मुद्राफेनैः**=मुद्रारूपी चंचल झागवाली, **बहुविधिलसत् दैवतझषैः**=बहुत प्रकार के शोभायमान देवता रूपी मगर मच्छों वाली, **क्रमस्त्रोताभिः**=क्रमरूपी शैवदर्शन स्त्रोतों वाली **परनादामृत नदीं**=परनाद अमृत नदी को, **वहसि**=धारण करती हो।

अर्थः–नित्यनवीन शिवरूप चैतन्य अमृत सागर में पहुँचाने वाली हे भवानी! आप ही नाद ब्रह्मरूप नदी के षड्चक्र रूपी भंवर हैं, मंत्र रूपी जिस की उर्मियाँ हैं, मुद्रायें जिस की चंचल झाग है बहुविध देवता जिसके मगरमच्छ हैं, क्रमरूपी शैवदर्शन जिसके स्त्रोत हैं।

टिप्पणी–क्रमदर्शन ग्रन्थों में पाँच मुद्रायें प्रसिद्ध हैं–1. करंकिणी, 2. क्रोधना, 3. भैरवी, 4. लेलिहाना 5. खेचरी।

परनाद-अमृतनदी-यह नदी शरीर के भीतर अनाहत नाद ध्वनि रूप से निरन्तर दिनरात चलती रहती है-यह ध्वनि स्वभावत: सारे शरीर में चारों ओर से निकलती रहती है इसको अनाहत ध्वनि कहते हैं-योगाभ्यास से ही यह ध्वनि सुनी जाती है।

महीपाथोवह्नि-श्वसन-वियत्-आत्मेन्दुरविभिः
वपुभिः-ग्रस्तांशैः-अपि, तव कियान्-अम्ब! महिमा।
अमून्या-लोक्यन्ते भगवति! न कुत्राप्यनु-तराम्-
अवस्थां प्राप्तानि त्वयि-तु, परम-व्योम-वपुषि (15)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता, **मही**=पृथिवी, **पाथः**=जल, **वह्नि**=अग्नि, **श्वसन**=वायु, **वियत्**=आकाश, **आत्मा**=जीवात्मा, **इन्दुः**=चन्द्रमा, **रविभिः**=सूर्य, **तवग्रस्तांशैः वपुभिः**=तुम्हारे अंश रूप से बने हुये, इन आठ स्वरूपों से, **तव महिमा**=तुम्हारी महिमा, **कियान्**=कितनी है (जानी नहीं जा सकती है जब कि) **त्वयि**=आपके, **परमव्योमवपुषि**=परम चिदाकाश स्वरूप में ये आठों स्वरूप, **अनुतरां-अवस्थां**=अत्यन्त सूक्ष्म (तुच्छ) अवस्था को, **प्राप्तानि**=पहुँचे हुये, **न कुत्रापि** कहीं भी नहीं, **आलोक्यन्ते**=देखने में आते हैं।

अर्थः—हे माता! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, जीवात्मा, चन्द्रमा, सूर्य जो आप के अंश रूप से बने हैं, अतः इन आठों स्वरूपों से आप की महिमा कितनी है, क्या जाना जा सकता है, जबकि ये आठों आप के परम चिदाकाश स्वरूप में अति तुच्छ अवस्था को पहुँचे हुये कहीं भी दिखाई नहीं देते हैं। यानी आप की महिमा के सामने इन आठ तत्वों की कोई गणना नहीं है।

टिप्पणी—पृथ्वी रेणुः-पयांसि कणिका, फल्गुः, स्फलिंगो लघुः। तेजो निश्वसनं मरुत् तनुतरं रन्ध्रं सुसूक्ष्मं नभः (मुकुन्दमाला)
उस चिदाकाश का साक्षात् कार होने पर पाँच भूतों की कोई सत्ता नहीं रहती है पृथिवी एक

धूल का कण दिखाई देता है, विशाल सागर छोटे जल के बूंद बनते हैं आग छोटी चिंगारियाँ जैसे दिखाई देती है, वायु एक सांस जैसा लगता है, आकाश छोटा सुराख जैसा प्रतीत होता है।

मनुष्याः तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयम्-इदं
भवाम्भोधौ मग्नं त्रिगुण-लहरीकोटि-लुठितम्।
कटाक्षः-चेत्-अत्र क्वचन तव मातः! करुणया
शरीरी सद्योयं व्रजति परमानन्द-तनुताम् (16)

अन्वय-शब्दार्थ

मनुष्याः=मनुष्य, **तिर्यञ्चः**=पशु पक्षी, **मरुतः**=मरुत आदि देवता समूह, **इति**=ऐसे ही, **इदं लोकत्रयम्**=यह तीनों लोक, **त्रिगुण**=सत्व रज और तम रूप, **लहरीकोटि**=करोड़ों लहरों में, **लुठितम्**=लुढकता हुआ, **भवाम्भोधौ**=संसार सागर में, **मग्नं**=डूबा हुआ है, **मातः**=हे माता, **अत्र**=इनमें से **क्वचन** किसी एक पर, **तव करुणया**=आपकी दया से, **कटाक्षः**=अनुग्रह की दृष्टि, **चेत्**=यदि हो तो, **अयं शरीरी**=यह जीव, **सद्यः**=उसी समय, **परमानन्द तनुताम्**=परमानन्दस्वरूप भाव को, **ब्रजति**=प्राप्त होता है।

अर्थः—मनुष्य पशुपक्षी, देवता इसी प्रकार यह तीनों लोक सत, रज, तम रूप करोड़ों लहरों में लुढकते हुये संसार सागर में डूबे हुये हैं। हे माता! इन में से किसी एक पर आपकी दया से अनुग्रह दृष्टि यदि हो, तो यह जीव उसी समय परमानन्द रूप भाव को प्राप्त होता है।

टिप्पणी-मामैष्ट विद्वन्! तव नास्त्यपायः, संसारकूपे तरणोस्त्यपायः
येनैव याता यातयो-स्य पारं, तमेव मार्गं तव निर्दिष्यमि।। अष्ट॰गीता

अर्थ—हे विद्वान्! घबराओ मत इस संसार रूपी कुएँ अथवा सागर से निकलने अथवा पार जाने का मार्ग दिखाऊंगा, जिस मार्ग से श्रेष्ठ संत लोग संसार सागर से पार गये हैं। वह मार्ग कौन सा है? इस श्लोक में उसका संकेत है-वह मार्ग है, माता! आप की दया दृष्टि।

कलां प्रज्ञां-आद्यां, समयं-अनुभूतिं समरसां
गुरुं पारम्पर्यं विनयं उपदेशं शिवकथाम्।
प्रमाणं निर्वाणं परमं-अतिभूतिं-परगुहां
विधिं विद्यां-आहुः सकल-जननीं-एव मुनयः (17)

अन्वय शब्दार्थ

मुनयः=मुनिजन, **सकल जननीं**=जगत् माता को, **एव**=ही, **कलां**=क्रियाशक्ति रूप, **प्रज्ञां**=बुद्धिरूप, **आद्यां**=आद्यशक्ति रूप, **समयं**=कालरूप, **अनुभूतिं**=अनुभवरूप अथवा विमर्श रूप, **समरसां**=साम्यावस्थारूप, **शिवकथां**=संवित् रूप अथवा विमर्श रूप, **गुरुं**=गुरु रूप, **पारम्पर्यं**=दीक्षारूप, **विनयं**=विनय अथवा नम्रता रूप, **उपदेशं**=उपदेश रूप, **प्रमाणं**=प्रमाण रूप, **निर्वाणं**=मुक्ति रूप **परमं**=उत्कृष्ट रूप, **अतिभूतिं**=परमैश्वर्य रूप, **परगुहां**=अति गोपनीयरूप, **विधिं**=विधि रूप, **विद्यां**=विद्यारूप, **आहुः**=कहते हैं।

अर्थः—मुनिजन जगत् जननी को क्रिया शक्ति रूप, बुद्धिरूप, आद्यशक्ति रूप, कालरूप, अनुभवरूप अथवा विमर्शरूप, साम्यावस्था रूप, गुरु रूप, दीक्षा रूप विनय अथवा नम्रता रूप, उपदेश रूप, प्रमाण रूप, मुक्ति रूप, उत्कृष्ट रूप, परमैश्वर्य रूप, अतिगोपनीय रूप विधिरूप, विद्यारूप कहते हैं

टिप्पणी—"एकं सत्-विप्राः बहुधा वदन्ति" एक ही परमात्मा को अथवा एक ही शक्ति को विद्वान् भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं।

प्रलीने शब्दौघे तत्-अनु-विरते-बिन्दुविभवे
ततस्तत्त्वे चाष्टाध्वनिभिः-अनुपाधिनि-उपरते
श्रिते शक्ते पर्वण्यनु-कलित-चिन्मात्र-गहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां परतनुम् (18)

अन्वय-शबदार्थ

शब्दौघे=नाद की ध्वनियाँ, **प्रलीने**=लय होने पर, **तत्-अनु**=उसके पश्चात्, **बिन्दु विभवे**=शिव प्रकाश पुँज दिखाई देने लगता है उसके, **विरते**=शान्त होने पर, **ततः**=उसके पश्चात्, **अष्टध्वनिभि** अनाहत चक्र में आठ ध्वनियाँ प्रकट होती हैं, **अनुपाधिनि**=उपाधिरहित विशुद्धिचक्र में, **उपरते**=ठहरने पर, **शाक्ते पर्वणि-श्रिते**=आज्ञा चक्र का सहारा लेकर, **अनुकलित**=विमर्श से जानी हुई, **चिन्मात्रगहनां**=ब्रह्मरन्ध्र सहस्रार में ठहरी हुई, **परतन्तुं**=उत्कृष्ट स्वरूप वाली **स्वसंवित्तिं**=अपनी "संवित्" का **रसयति योगी**=योगी रसास्वादन अमृतपान करता है।

अर्थः—मूलाधार चक्र में ध्यान स्थिर होने पर ध्वनियाँ सुनने में आती है, मूलाधार में नाद की ध्वनियाँ लय होने पर उस के पश्चात् योगी को शिव प्रकाश पुंज दिखाई देता है। उसके शान्त होने पर उसके पश्चात् अनाहत चक्र में योगाभ्यासी को आठ प्रकार की ध्वनियाँ सुनने में आती हैं, विशुद्धि चक्र में ध्यान के ठहरने पर आज्ञा चक्र का सहारा लेकर विमर्श से जानी हुई ब्रह्मरन्ध्र में ठहरी हुई उत्कृष्ट स्वरूप वाली अपनी संवित् का योगी रसास्वादन अमृतपान करता है।

टिप्पणी—योग शास्त्रों के अनुसार जब साधक (योगी) सुष्मणा नाडी के माध्यम से सहस्रार अथवा ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचने का अभ्यास करता है उस समय मूलधार में ही ध्यान स्थिर होने पर, नाद की ध्वनि तीव्र रूप से सुनाई देती है। योगियों का कहना है, इस मार्ग पर अग्रसर होने पर घंटा आदि वाद्य की ध्वनियाँ होती हैं।

नाद या शब्द ब्रह्म=दस प्रकार का होता है। परन्तु उपरिलिखित श्लोक में आठ ध्वनियों का ही वर्णन है। जब कि स्वच्छन्द तन्त्र में आठ ही ध्वनियों का वर्णन है, परन्तु तन्त्रालोक में दस ध्वनियों का वर्णन है।

परानन्दाकारां निरवधि, शिवैश्वर्य-वपुषं
निराकार-ज्ञान, प्रकृतिं-अनवछिन्न-करुणाम्।
सवित्रीं भूतानां निर्-अतिशय-धामास्पद-पदां
भवो वा मोक्षो वा भवतु भवतीं-एव भजताम् (19)

अन्वय-शब्दार्थ

परानन्दाकारां=परमानन्द स्वरूप, **निर्-अवधि**=सीमा रहित, **शिवैश्वर्य-वपुषं**=शिव की ऐश्वर्य शक्ति स्वरूप वाली, **निराकार ज्ञान प्रकृतिं**=अतिसूक्ष्म ज्ञान रूप स्वभाव वाली, **अनवच्छिन्न करुणां**=अपार अनुग्रहरूप वाली, **भूतानां सवित्रीं**=चराचर सृष्टि को उत्पन्न करने वाली, **निर्-अतिशय-धामास्पद-पदां**=सबसे उत्तम परम शिव का स्थान बनी हुई, **भवतीं**=ऐसे ही स्वरूप वाली आपका, **भजतां**=जो ध्यान करते हैं, **भवो**=संसार, वा=अथवा, **मोक्षो** वा=या मोक्ष दोनों एक जैसे हैं।

अर्थ:—परमानन्द रूप, सीमारहित, शिव की ऐश्वर्य शक्ति स्वरूपवाली, अतिसूक्ष्म ज्ञान रूप स्वभाव वाली, अपार-अनुग्रहरूप वाली, चराचर सृष्टि को उत्पन्न करने वाली, सबसे उत्तम परमशिव का स्थान बनी हुई ऐसे ही स्वरूप वाली आप का जो ध्यान करते हैं। उनके लिये भोग अथवा मोक्ष एक जैसे हैं।

टिप्पणी—"भोग और मोक्ष" की एक जैसी प्रतीति माँ की अनुग्रह दृष्टि से ही संभव है, पाठक यह न समझें जिस पर माँ की दया दृष्टि होगी, वह स्वतन्त्र रूप में भोगों का भोग कर सकता है-बल्कि माता के अनुग्रह से विषयों (माँस मदिरा) आदि में होते हुये भी उस भक्त का मन विचलित नहीं होता है-मन के विचलित न होने से भोग भोगने का प्रश्न ही नहीं होता है बल्कि वह भक्त भोगों से घृणा करता है-

"विकार-हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीरा:" (कुमार सम्भव)

अर्थ—विषय भोगों में होते हुये भी जिसका मन विचलित नहीं होता है-बल्कि विषयों से घृणा करता है वही धीर है वही योगी है, उसी का जीवन सफल जीवन है।

जगत्-काये कृत्वा-तं-अपि हृदये तत् च पुरुषे
पुमांसं बिन्दुस्थं तं-अपि परनादाख्य-गहने।
तत्-एतत्-ज्ञानाख्ये, तत्-अपि परमानन्द-विभवे
महा-व्योमाकारे त्वत्-अनुभव-शीलो विजयते (20)

अन्वय-शब्दार्थ

जगत्=जगत को, **काये**=अपने शरीर में, **कृत्वा**=लय करके, **तं-अपि**=उस शरीर को भी (विमर्श से) **हृदये**=हृदय में, **तत्**-च=उस हृदय को भी, **पुरुष**=जीवात्मा में, **तं बिन्दुस्थं पुमांसं**=उस बिन्दु ज्ञान में ठहरे हुये जीवात्मा को, **परनादाख्य गहने**=परनादनाम वाले घने शिव तत्व में, **तत्-एतत्**=उस परनाद को भी **ज्ञानाख्ये**=ज्ञान नाम वाले सदाशिव में, **तत्**=उस अवस्था को भी **परमानन्द विभवे**=परमानन्द ऐश्वर्य युक्त, **महाव्योमा-कारे**=चित्=आकाश स्वरूप वाली देवी में क्रमशः लय करके, **त्वत्-अनुभवशील**=इस क्रम में साधना करने वाला योगी, **विजयते**=जय जयकार के योग्य है।

अर्थः—जगत् को अपने शरीर में लय करके (यानी बाह्य जगत् को भूल कर) उस शरीर को भी हृदय में, उस हृदय को भी जीवात्मा में, उस बिन्दु ज्ञान में ठहरे हुये जीवात्मा को भी, ज्ञान नाम वाले सदाशिव में उस अवस्था को भी परमानन्द ऐश्वर्य युक्त आकश स्वरूप वाली देवी में क्रमशः लय करके, इस क्रम से साधना करने वाला योगी जय जय कार के याग्य है।

टिप्पणी—उपरिलिखित श्लोक में साधक ने जो साधना क्रम बताया है यह आवश्यक नहीं हर साधक को इसी क्रम से सफलता होगी जैसा कि तन्त्रालोक में दर्ज है—
चित्त-भेदात् मनुष्यानां शास्त्रभेदे वरानने, व्याधिभेदात् यथा भेदो भेषजानां महौजसाम्।
यथैकं भेषजं ज्ञात्वा न सर्वत्र भिषज्यति, तथैकं हेतु-मालम्ब्य न सर्वत्र गुरुर्भवेत्।

इस श्लोक का सारांश है–साधक की रुचि, शरीर, वातावरण भिन्न-भिन्न होने से साधनायें भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती हैं, यद्यपि हर औषधि का प्रभाव नियत है परन्तु हर एक बीमार के लिये उस औषधि का प्रभाव एक जैसा नहीं होता है।

विधे! विद्ये! वेद्ये! विविध समये! वेद! जननि!
विचित्रे! विश्वाद्ये! विनय-सुलभे! वेद गुलके!
शिवाज्ञे! शीलस्थे! शिवपदवदान्ये! शिवनिधे!
शिवे! मातर्-मह्यं त्वयि वितर भक्तिं निरुपमाम् (21)

अन्वय-शब्दार्थ

विधे=हे विधि रूप, **विद्ये**=हे विद्या रूप, **वेद्ये**=हे जानने योग्य, **विविधसमये**=नाना प्रकार की सिद्धान्त वाली, **वेद जननि**=हे वेदों को प्रकट करने वाली, **विचित्रे**=हे नाना रूपों वाली, **विश्वाद्ये**=हे जगत् के आद्यरूप, **विनय सुलभे**=हे भक्ति से प्राप्य, **वेद गुलके**=हे वेदों की साररूप, **शिवाज्ञे**=हे शिव की आज्ञा, **शीलस्थे**=हे अपने ही स्वभाव अथवा स्वरूप में ठहरी हुई, **शिवपदवदान्ये**=हे शिवधाम को देने वाली, **शिवनिधे**=हे कल्याण के निधि रूप, **मातः**=हे माँ! **शिवे**=हे शिव की शक्ति, **मह्यं**=मुझे, **त्वयि**=अपने स्वरूप में, **निरुपमां**=उपमा रहित, **भक्तिं**=भक्ति, **वितर**=दीजिये।

अर्थः–हे विधिरूप, हे अष्टादश विद्यारूपवाली, हे जानने योग्य, हे नाना प्रकार की सिद्धान्तवाली, हे वेदों को प्रकट करने वाली हेनानारूपवाली, हे जगत् के आद्यरूप, हे भक्ति से प्राप्य, हे वेदों की सार रूप, हे शिव की आज्ञा रूप, हे अपने ही स्वभाव अथवा स्त्ररूप में ठहरी हुई, हे शिवधाम को देने वाली, हे कल्याण के निधिरूप, हे माँ, हे शिव की शक्ति मुझे अपने स्वरूप में उपमा रहित भक्ति दीजिये।

टिप्पणी–विद्यायें अठारह हैं-चार वेदः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अथर्व वेद, शिक्षा, कल्प,

व्याकरण, निरुक्त, छन्द ज्योतिषि, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, पुराण, आर्युवेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थ शास्त्र, ये 8 विद्यायें कहलाती हैं।

विधेर्मुण्डं हृत्वा यत्-अकुरुत पात्रं करतले
हरिं शूलप्रोतं यत्-अगमयत्-अंसाभरणताम्।
अलंचक्रे कण्ठं यत् अपि गरलेनाम्ब! गिरिशः
शिवस्थायाः शक्तिः-तत्-इदं-अखिलं=ते विलसितम् (22)

अन्वय शब्दार्थ

विधेः=ब्रह्मा का, **मुण्डं**=सिर, **हृत्वा**=काटकर, **करतले**=हाथ में, **पात्रं**=भिक्षापात्र, **अकरुत**=बनाया, **यत्**=जो, **हरिं**=विष्णु को, **शूल प्रोतं**=त्रिशूल में पिरोकर, **असांभरणतां**=कंधे का भूषण को, **अगमयत्**=बनाया, **यत्**=जो, **अपि**=और **कण्ठं**=गले को, **गरलेन**=हलाहल विष से, **अलंचक्रे**=सजाया, **तत् इद-अखिलं**=यह सब कुछ, **शिवस्थायाः=शक्तेः**=शिव में ठहरी हुई शक्ति का, **विलसितम्**=विलास है।

अर्थ—ब्रह्मा का पाँचवा सिर काट कर हाथ में भिक्षापात्र बनाया विष्णु को त्रिशूल में पिरोकर कंधे का भूषण बनाया, और गले को हलाहल विष से सजाया, यह सब कुछ, शिव में ठहरी हुई शक्ति का ही विलास है।

टिप्पणी—द्यपि-अमंगलानीह सेवते शंकरः सदा
तथा मंगलं तस्य स्मरणात्-जायते।। शिवपुराण

अर्थः—यद्यपि शंकर ने सभी अमंगल वस्तुओं को ही अपनाया है तो भी उनके स्मरण मात्र से ही दूसरों को मंगल होता है।

"भवानि त्वत्-पाणिग्रहण-परिपाटी-फलम्-इदम्" शंकर का दूषण भी भूषण कैसे बना-यह केवल आपके पाणि ग्रहण की परिपाटी का फल है-यह शक्ति का ही प्रभाव है।

विरिंच्याख्या मातः! सृजसि हरिसंज्ञा-त्वं-अवसि
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि विदधासी-श्वरदशाम्।
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशौघ-दलिनी
त्वं-एवैकाऽनेका भवसि, कृतभेदैः-गिरिसुते (23)

अन्वय-शब्दार्थ

विरिंच्याख्या=ब्राह्मणी के रूप में, **मातः**=हे माँ, **त्रिलोकीं**=तीन लोकों को **सृजसि**=बनाती हो, **त्वं**=आप ही, **हरिसंज्ञा**=वैष्णवी शक्ति रूप से, **अवसि**=तीनों लोकों की रक्षा करती हो, **रुद्राख्या**=रुद्राणी रूप से, **हरसि**=तीनों लोकों का नाश करती हो, **ईश्वरदशां**=ईश्वरदशा को प्राप्त हुई, तीन लोकों का पिधान करती है, **पाशौघदलिनी**=बन्धनों के समूह को काटनेवाली बनकर, **शिवयसि**-तीनों लोकों को आन्दमयी बनाती हो, **त्वं**=तुम, **एकैव**=एक ही होकर भी, **कृतभदैः**=उत्पन्न किये हुये भेदों से **अनेका**=अनन्त, **भवसि** बनती हो।

अर्थः—हे माता, ब्रह्मणी के रूप में आप तीन लोकों को बनाती हो, आप ही वैष्णवी शक्ति रूप से तीनों लोकों की रक्षा करती हो, रुद्राणी रूप से तीनों लोकों का नाश करती हो ईश्वर दशा को प्राप्त हुई आप ही तीनों लोकों का पिधान करती हो, आप शिव की शक्ति बनकर बन्धनों के समूह को काटती हुई तीनों लोकों को आनन्दमयी बनाती हो, आप एक ही होकर भी उत्पन्न किये हुये भेदों से अनन्त बनती हो।

टिप्पणी—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी, अहं विष्णुं-उरुक्रमं-दधानि, मत्तः प्रकृति-पुरुषात्मकं जगत् (अर्थवेद)।
अर्थ—मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ-मैं विष्णु रूप हूँ, मुझे से ही यह प्रकृति पुरुषात्मक जगत् उत्पन्न होता है।

मुनीनां चेतोभिः प्रमृदित-कषायैः-अपि मनाक्
अशक्ये संस्प्रष्टुं चकित-चकितैः-अम्ब! सततम्।
श्रुतीनां मूर्धानः प्रकृति-कठिनाः कोमलतरे
कथं ते विन्दन्ते पद किसलये पार्वति! पदम् (24)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता, जिन मुनियों ने यम नियमादि से, **प्रमृदित-कषायैः**=काम क्रोधादि को हटाया है, **चकितचकितैः**=भयभीत होकर, **मुनीनां**=मुनियों **के**=मन-चित्त बुद्धियाँ, **मनाक्-अपि**=जरा भर भी, **संस्प्रष्टुं**=स्पर्श करने के लिये, **अशक्ये**=असमर्थ हैं, **पार्वति!**=हे पार्वती, **श्रुतीनां मूर्धानः**=उपनिषद्, **प्रकृति कठिनाः**=स्वभाव से ही कठिन, ते आपके, **कोमल तरे**=अति कोमल, **पद किसलये**=चरण कमलों में, **कथं**=कैसे, **पदं**=स्थान, **विन्दते**=पा सकते हैं।

अर्थः—जिन मुनियों ने यमनियमादि से कामक्रोधादि हटाया है, वे भी भयभीत होकर अपनी मन बुद्धि से आप का ज़रा भर भी वर्णन करने में असमर्थ है-हे पार्वती उपनिषद् स्वभाव से भी कठिन हैं वे आप के कोमल चरण कमलों में स्थान कैसे पा सकते हैं।

टिप्पणी—"यतो वाचो निवर्तन्ते-अप्राप्य मनसा सह" उपनि०
अर्थ—जहाँ से मन सहित वाणी आदि इन्द्रियाँ उसे न पाकर लौट आती है।
चकितं-अभिधते श्रुतिर्-अपि—आप का स्वरूप कैसा है उसका वर्णन करने में वेद भी हिचकिचाते हैं। महिहम्नस्तो०

तड़ित्-वल्लीं नित्यां-अमृत-सरितं पार-रहितां
मलोत्तीर्णां ज्योत्सनां प्रकृतिम्-अगुण-ग्रन्थि-गहनाम्।
गिरां दूरां विद्यां-अवनत-कुचां विश्व-जननीं
अपर्यन्तां लक्ष्मीं-अभिदधति सन्तो-भगवतीम् (25)

अन्वय-शब्दार्थ

सन्तः=सन्त लोग, **भगवतीं**=देवी को, **तड़ित् वल्लीं**=बिजली की लता, **नित्यां**=नित्य, **पाररहितां**=जिस का कोई पार नहीं, **अमृत-सरितं**=अमृत की नदी, **मलोत्तीर्णां**=निर्मल, **ज्योत्सनां**=चांदनी, **अगुण ग्रन्थि**=सत्व-रज-तम इन तीन गुणें से रहित, **गहनां**=अतिसूक्ष्म, **प्रकृति**=तीन गुणों वाली (अनिर्वचनीय) **गिरां दूरं**=वाणी का अविषय **विद्यां**=विद्यारूप, **अवनत कुचां**=झुके हुये ज्ञानक्रिया रूप=स्तनों वाली, **विश्वजननीं**=जगत् की माता, **अपर्यन्तां**=सीमारहित, **लक्ष्मीं**=लक्ष्मीं अभिदधति=लक्ष्मी इन नामों से पुकारते हैं।

अर्थः—सन्त लोग उस जगत्-अम्बा को बिजली की लता, नित्य पाररहित, अमृत की नदी जिस का कोई पार नहीं, मल रहित, निर्मल चांदनी, तीन गुणों वाली, प्रकृति, तीन गुणों से रहित, अतिसूक्ष्म, वाणी का अविषय, विद्यारूप, झुके हुये ज्ञानक्रिया रूप स्तनों वाली, जगत् की माता, सीमा रहित, लक्ष्मी इन इन नामों से पुकारते हैं।

टिप्पणी—पञ्चस्तवीकार ने उस "संवित्" "विमर्श" अथवा "चिदाकाश" को सूर्य चन्द्रमा अग्नि बिजली आदि प्रकाशित वस्तुओं की उपमा देकर ही वर्णन किया है। न कि इन प्रकाशित सूर्य, बिजली आदि को ही "संवित्" माना है, इन सभी प्रकाशित वस्तुओं के बारे में उपनिषद् कहते हैं:-

न तत्र सूर्योभाति न चन्द्र तारकं, नेमा विद्युतो भान्ति कुतोय-मग्निः
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।। उपनि॰

अर्थ—उस "संवित्" परब्रह्म" के प्रकाश के सामने सूर्य का तेज लुप्त हो जाता है, चन्द्रमा तारागण और बिजली भी वहाँ चमकती नहीं फिर उस अग्नि की बात ही क्या, जो कोई प्रकाशवान् वस्तु है उस "चिदाकाश" "परब्रह्म" के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है।

शरीरं क्षित्यम्भः प्रभृति-रचितं केवलं-इदं
सुखं दुःखं चायं कलयति पुमान्-चेतन इति।
स्फुटं जानानोपि प्रभवति न देही रहयितुं
शरीराहंकारं तव समय बाह्यः-गिरिसुते! (26)

अन्वय शब्दार्थ

गिरिसुते!=हे पार्वती, **अयं चेतनः पुमान्**=यह चेतन पुरुष, **इदं**=इस, **केवलं**=सिर्फ, **क्षिति**=पृथ्वी, **अम्भः**=जल, **प्रभृति**=आदि का, **रचितं**=बना हुआ, **शरीरं**=शरीर के, **सुखं दुःखं च**=सुख और दुख को, **इति**=ऐसे ही **कलयति** जानता है, **तव-समयबाह्यः**=आप के गुरुमुख अनुग्रह के बिना, **स्फुटं जानानः अपि**=अच्छी तरह से जानता हुआ भी, **देही**=शरीरधारी, **शरीराहंकारं**=शीर के अभिमान **रहयितुं** छोड़ने में, न **प्रभवति**=समर्थ नहीं बनता है।

अर्थः—हे पार्वती! यह चेतन पुरुष इस शरीर को पृथ्वी जल आदि (जड़) पाँच भूतों से बना हुआ है, ऐसा स्पष्ट रूप में जानता है, सुख दुख को भी अनुभव करता है, अथवा जानता है, परन्तु यह शरीरधारी शरीर के अहंकार को माता के अनुग्रह के बिना छोड़ने में समर्थ नहीं होता है।

टिप्पणी—ईश्वरोऽहं-अहं-एव रूपवान्-पण्डितोस्मि सुभगोस्मि कोऽपरः
मत्समोस्ति जगतीति शोभते, मानिता-त्वत्-अनुरागिणः परम्।। शिवस्तो॰
अर्थ—हे माता! अथवा शंकर! मैं स्वयं ईश्वर हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं तत्त्वदर्शी हूँ, मैं भाग्यवान् हूँ, मेरे समान दूसरा कौन है—ऐसा अभिमान करना एक मनुष्य के लिये दूषण है—परन्तु माँ जिन पर आप की कृपादृष्टि होती है; उनके लिये यह दूषण भी भूषण बनता है—आप के अनुग्रह से यह तुच्छ अभिमान् "पूर्णाहन्ता रूप" में परिवर्तित होता है।

पिता माता भ्रता सुहृत्-अनुचरः सद्म गृहिणी
वपुः पुत्रो मित्रं धनमपि यदा-मां विजहति।
तदा मे भिन्दाना सपदि भय-मोहान्ध-तमसं
महाज्योत्सने! मात-र्भव करुणया सन्निधिकरी (27)

अन्यवय-शब्दार्थ

महाज्योत्सने=हे महाप्रकाशमयी माँ! **पिता, माता, भ्रता, सुहृत्**=**मित्र, धनं-अपि**=धन भी, यदा=जब (मरण काल में), **मां**=मुझे **विजहति**=छोड़ दें, **तदा**=उस मय, **करुणाया**=दया करके, **मे**=मेरे, **भय मोहान्ध-तमसं**=भय, मोहरूपी अन्धकार को, **भिन्दाना**=नाश करती हुई, **सपदि**=उसी क्षण, **सन्निधिकरी भव**=प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाइये।

अर्थः—हे महाप्रकाशमयी माँ! पिता, माता, भ्राता, मित्र नौकर, घर, पत्नी, शरीर, पुत्र, मित्र, धन जब मुझे मरण काल में साथ छोड़ देगा, दया करके मेरे भय, तथा मोह रूपी अन्धकार को नाश करती हुई उसी क्षण प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाइये।

टिप्पणी—का ते कान्ता, कस्ते पुत्रः, संसारो-यम्-अतीव विचित्रः
कस्य त्वं कः कुत आयातः, तत्त्वं चिन्तय यत्-इदं भ्राता।
मा-कुरु धन-जन-यौवन गर्वं, हरति निमेषात् कालः सर्वं
माया-मयम्-इदं-अखिलं हित्वा, ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा।
(जगृतगुरु शंकराचार्य)

अर्थ—स्त्री, पुत्र के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है, यह संसार अति विचित्र है, आप किसके हैं, आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं, हे भाई इस का विचार कर, परिवार, धन, जवानी का अभिमान मत कर, यह सब मिथ्या है-यह जानकर ब्रह्म अथवा माँ की शरण में जाओ।

सुता दक्षस्यादौ किल सकलमातः-त्वम्-उत्-अभूः
सदोषं तं हित्वा तत्-अनु गिरिराजस्य तनया।
अनाद्यन्ता शम्भोः-अपृथक्-अपि शक्ति-भगवती
विवाहात्-जायासी-त्यहह चरितं वेत्ति तव कः (28)

अन्वय-शब्दार्थ

सकल-मातः!=हे सब की माँ, **त्वम्**=तुम, **आदौ**=पहले, **किल**=निश्चय ही, **दक्षस्य**=दक्ष प्रजापति की, **सुता**=पुत्री, **उदभूः**=उत्पन्न हुई, **तत्-अनु**=उसके पश्चात्, **तं**=उस, **सदोषं**=दोषी प्रजापति को, **हित्वा**=छोड़कर **तत्अनु**=उसके पश्चात्, **गिरिराजस्य**=हिमालय की, **तनया**=लड़की बनी, **अनाद्यन्ता**=आदि और अन्त रहित, **भगवती**=ऐश्वर्यवाली, **अपृथक्-अपि-शक्तिः**=शंकर से अभिन्न शक्ति होने पर भी, **विवाहात्**=विवाह करके, **शम्भोः**=शंकर की, **जाया**-असि=पत्नी बनी, **इति=अहह**=आश्चर्य है, तव=तुम्हारे, **चरितं**=चरित को, **कः**=कौन, **वेत्ति**=जानता है।

अर्थः—हे माता! आप पहले दक्षप्रजापति की पुत्री रूप में उत्पन्न हुई, उसके पश्चात् उस दोषी प्रजापति को छोड़कर आप हिमालय की लड़की बनी, आद्य-अन्त रहित ऐश्वर्य वाली आप शिव से अभिन्न शक्ति होने पर भी विवाह करके शंकर की पत्नी बनी, यह तो आश्चर्य है, आप के चरित (व्यवहार) को कौन जानता है।

टिप्पणी—दक्ष के पुत्री के रूप में प्रकट होकर, दक्ष के यज्ञ में पतिदेव का अपमान सुन कर पैतृक सम्बन्ध को तृणवत् समझकर पिता से प्राप्त शरीर को भी जला डाला इस सती की कथा से संसार की स्त्रियों को उपदेश मिलता है- "नारी धर्म पति देव न दूजा" हिमालय की पुत्री रूप में प्रकट होकर पार्वती ने अघोर तपस्या की, शंकर को पतिरूप में प्राप्त किया, जिस शंकर ने काम देव को भस्म करके "स्मर" बनाया था, इस कथा से शिक्षा मिलती है, "नारी शक्ति का केन्द्र है"

कणाः-त्वत्-दीप्तीनां रवि-शशि-कृशानु-प्रभृतयः
परं ब्रह्म क्षुद्रं तव नियतं-आनन्द-कणिका।
शिवादि-क्षित्यन्तं, त्रिवलय-तनोः सर्वमुदरे
तवस्ते भक्तस्य स्फुरसि हृदि चित्रं भगवति (29)

अन्वय-शब्दार्थ

रविः=सूर्य, **शशि**=चन्द्रमा, **कृशानु प्रभृतयः**=अग्नि आदि, **त्वत्**=आप के, **दीप्तीनां**=दीप्ति के, **कणाः**=छोटे छोटे ज़रे हैं, **परं ब्रह्म**=परं ब्रह्म भी, **नियतं**=निश्चय से, **क्षुद्रं**=आप के सामने तुच्छ है वह भी, **तव**=आप के, **आनन्दकणिका**=आनन्द का कण है, **शिवादि-क्षित्यन्तं**=शिव से पृथ्वी तक, **सर्वं**=सारा जगत्, **त्रिवलयतनोः**=तीन लपेट वाले शरीर के, **उदरे**=पेट में, **आस्ते**=ठहरा हुआ है, **भगवति**=हे भगवती, **चित्रं**=यह आश्चर्य की बात है, **भक्तस्य**=भक्त के, **हृदि**=हृदय में, **स्फुरसि**=प्रकट होती हो।

अर्थः—सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदि आप के दीप्ति के छोटे छोटे ज़रे हैं, परं ब्रह्म भी आप के स्वरूप के सामने तुच्छ हैं, वह भी आप के आनन्द का एक कण हैं, शिव से पृथ्वी तक सारा जगत् आप के तीन लपेट वाले उदर में ठहरा हुआ है, हे भगवती यह आश्चर्य है-आपका स्वरूप इतना विशाल होने पर भी आप भक्त के छोटे हृदय में प्रकट होती हैं।

त्वया यो जानीते रचयति भवत्यैव सततं
त्वयैवे-च्छत्यम्ब! त्वं-असि निखिलाः यस्य तनवः।
गतः साम्यं शम्भुः वहति परमं व्योम भवती
तथाप्येवं-हित्वा, विहरति शिवस्येति-किं इदम् (30)

अन्वय शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता, **यः**=जो शिव, **त्वया**=आपकी ही ज्ञान शक्ति से, **जानीते**=जाना जाता है, **भवत्या**-एव=आपकी ही क्रियाशक्ति से, **रचयति**=सृष्टि को बनाता है, **सततं**=नित्य, **त्वया एव**=आपकी ही शक्ति से, **इच्छति**=शिव इच्छा करता है, **यस्य**=जिसके, **निखिलाः**=सभी **तनवः**=स्वरूप, **त्वम्**=आप ही, **असि**=हो, **शम्भुः साम्यं गतः**=शिव साम्यावस्था में पहुंच कर, **परमं व्योम वहति**=अपने धाम में चराचर सृष्टि को लय करता है, **एवं**=ऐसे ही, **हित्वा**=अपने साकार निराकार अथवा व्यक्त अव्यक्त स्वरूप को छोड़कर, **शिवस्य**=भगवान् शंकर से फिर से, **विहरति**=क्रीडा करती हो, इति **किं-इदम्**=यह कैसा आश्चर्य है।

अर्थः—हे माता, शंकर आप की ही ज्ञानशक्ति से जाना जाता है, आपकी ही क्रिया शक्ति से सृष्टि को बनाता हे, आप की ही शक्ति से शिव इच्छा करता है, जिस के सभी स्वरूप आप ही हो, शिव साम्यावस्था में पहुँच कर अपने में ही चराचर सृष्टि को लय करता है, ऐसे ही अपने व्यक्त अव्यक्त स्वरूप को छोड़कर, भगवान् शिव से फिर क्रिडा करती हो-माँ! यह कैसा आश्चर्य है।

टिप्पणी—इस श्लोक में भक्त माँ से कहता है, शंकर के सभी स्वरूप आप ही है। भगवान् शंकर के स्वरूप हैं-आठ-शर्व, भवः, रुद्रः, उग्रः, भीमः, पशुपतिः, महादेव, ईशान।

पुरः पश्चात्-अन्त-र्बहिर्-अपरिमेयं परिमितं
परं स्थूलं सूक्ष्मं सकुलं-अकुलं-गुह्यं-अगुहम्।
दवीयो नेदीयः सत्-असत्-इति-विश्वं भगवतीं
सदा पश्यन्त्याज्ञां वहसि भुवन-क्षोभ-जननीम् (31)

अन्वय-शब्दार्थ

पुर:=सामने (प्रत्यक्ष), **पश्चात्**=पीछे परोक्ष, **अन्त:**=अन्दर, **बहि:**=बाहर, **अपरिमेयं**=अनन्त, **परिमितं**=संकुचित, **परं**=उत्कृष्ट, **स्थूलं**=स्थूल, **सूक्ष्मं**=सूक्ष्म, **सकुलं**=विश्वमय, **अकुलं**=विश्वोतीर्ण, **गुह्यं**=छिपाने योग्य, **अगुहं**=प्रकट, **दवीय:**=दूर, **नेदीय:**=समीप, **सत्**=सत्रूप, **असत्**=शून्य रूप इति ऐसे ही भिन्न भिन्न रूपों से, **विश्वं भगवतीं**=विश्वरूप भगवती को, **सदा**=नित्य, **पश्यन्ति**=भक्त लोग देखते हैं, **भुवन क्षोभ जननीं**=सारे जगत् को क्षोभमय (भेदमय) बनाने वाले, **आज्ञां**=स्वभाव को, **वहसि**=धारण करती हो।

अर्थ:—प्रत्यक्ष (सामने) परोक्ष (पीछे) अन्दर, बाहर, अनन्त संकुचित, उत्कृष्ट, स्थूल, सूक्ष्म, विश्वमय, विश्वोतीर्ण, प्रकट अप्रकट दूर समीप, सत् रूप, असत् रूप, ऐसे ही भिन्न भिन्न रूपों से, विश्वरूप भगवती को भक्त जन सदा देखते हैं। माता आप ही सारे जगत् को भेदमय बनाने वाले स्वभाव को धारण करती हो।

टिप्पणी—अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो, रूंप-रूपं प्रतिरूपो बभूव
एक स्तथा सर्वं-भूतान्तरात्मा-रूपं रूपं प्रति रूपो वभूब।। (उपनि०)

अर्थ—एक ही अग्नि सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है-जब वह साकार रूप में प्रज्वलित होता है तब उन आधार भूत वस्तुओं जैसा आकार का होता है, वैसे ही "संवित्" शक्ति एक है, वह भी भिन्न-भिन्न प्राणियों में उन उन प्राणियों के नाना रूपों में प्रकाशित होती है।

मयूरवा: पूष्णीव ज्वलन इव तत्-दीप्ति-कणिका:
पयोधौ-कल्लोल-प्रतिहत-महिम्नीव पृषत:।
उदेत्योदेत्याम्ब, त्वयि सह निजै: तात्त्विक-कुलै:
भजन्ते तत्त्वौघा: प्रशमम्-अनुकल्पं परवशा: (32)

अन्वय-शब्दार्थ

अम्ब!=हे माता, **मयूरवा:**=किरणें, **पूष्णि इव**=सूर्य में जैसे, **ज्वलने**

इव=अग्नि में जैसे, **तत्-दीप्ति-कणिका:**=उसी अग्नि के कण, **पयोधौ**=समुद्र में, **कल्लोल-प्रति हत महिम्नीव**=तरंगों के उतार चढ़ाव से भरपूर, **पृषतः इव**=छींटों की भांति, **तत्त्वौघा:**=तत्वों के समूह, **उदेत्य-उदेत्य**=बार बार उदय होकर, **निजै:-तात्विक कुलै:**=अपने तेजो मय समूहों के साथ, **परवशा:**=विवश होकर, **त्वयि**=आप में ही, **अनुकल्प**=हर प्रकार से, **प्रशमं भजन्ते**=लय हो जाते हैं।

अर्थ:—हे माता! किरणें जैसे सूर्य से ही निकलती हैं सूर्य में ही लय हो जाती हैं, अग्नि में से जैसे अग्नि कण प्रकट होकर अग्नि में ही लय हो जाती हैं, समुद्र की लहरें समुद्र से उत्पन्न होकर जैसे समुद्र में ही लय हो जाती है, ऐसे ही सभी तत्त्व माता! आप में से ही प्रकट होकर फिर से विवश होकर आप में ही लय हो जाती हैं।

टिप्पणी—"यथोर्ण-नाभि: सृजते गृह्णते च" (मुण्डक उप॰)
अर्थ—जिस प्रकार मकड़ी अपने उदर में ठहरे हुये जाल को बाहर निकाल कर फैलाती है फिर उसे स्वयं ही निगल जाती है, इसी प्रकार वह जगत् जननी इस चराचर सृष्टि का स्वयं ही निमित्त कारण भी है और उपादान कारण भी।

विधुः-विष्णुः-ब्रह्मा, प्रकृतिर्-अणुर्-आत्मा दिनकरः
स्वभावो जैनेन्द्रः सुगत मुनिर्-आकाशम्-अनिलः।
शिवः शक्तिः-चेति, श्रुति-विषयतां ताम्-उपगतां
विकल्पैर्-एभिस्त्वाम्-अभिदधति सन्तो भगवतीम् (33)

अन्वय शब्दार्थ

विधु:=चन्द्रमा, **विष्णु:**=नारायण, **ब्रह्मा**=ब्रह्मा, **प्रकृति:**=माया, **अणु:**=जीवात्मा, **दिनकर:**=सूर्य, **स्वभाव:**=स्वभाव, **जैनेन्द्र:**=महावीर स्वामी, **सुगत मुनि:**=बुद्धभगवान्, **आकाशं**=आकाश, **अनिल:**=वायु, **शिव:**=शिव,

शक्तिः=शक्ति, **श्रुति-विषयतां-उपगतां**=वेदों का विषय बनी हुई, **भगवतीं**=भगवती को, **सन्तः**=सन्त लोग, **विकल्पैः-एभिः**=भिन्न भिन्न नामों से, **अभिदधति**=पुकारते हैं।

अर्थः—चन्द्रमा, विष्णु, प्रकृति, जीवात्मा, सूर्य, स्वभाव, महावीर स्वामी, बुद्धभगवान्, आकाश, वायु, शिव, शक्ति, इन भिन्न भिन्न नामों से सन्तजन वेदों का विषय बनी हुई भगवती को पुकारते हैं।

टिप्पणी—रुचीनां वैचित्र्यात्-ऋजुकुटिलनाना-पथजुषां
नृणाम्-एको गम्यः-त्वम्-असि पयसां अर्णव इव।। (महिम्नस्तोत्र)

अर्थ—जैसे सीधे अथवा टेढ़े बहने वाले सभी जल समुद्र में पहुँचते हैं। वैसे ही सांख्य योग, बौद्ध, जैन, शैव, शाक्तिक मतवालों का प्राप्य स्थान एक मात्र आप ही हैं।

प्रविश्य स्वं मार्गं सहजदयया देशिक-दृशा
षट्-अध्व-ध्वान्तौघ-च्छिदुर-गणनातीत-करुणाम्।
परानन्दाकारां सपदि शिवयन्तीं-अपि तनुं
स्वं-आत्मानं धन्याः, चिरं-उपलभन्ते भगवतीम्।।34।।

अन्वय-शब्दार्थ

धन्या=भाग्यवान् पुरुष, **सहजदयया**=आप की स्वाभाविक दया से, **देशिकदृशा**=गुरु की कृपा से, **स्वं मार्गं**=शाक्त मार्ग में, **प्रवेश्य**=प्रवेश करके, **षट्-अध्व**=छः अध्वरूपी, **ध्वान्तौघ**=अन्धकार समूह को, **छिदुर**=काटने के लिये, **गणनातीत**=अपार, **करुणां**=कृपावाली, **परानन्दाकारां**=परमानन्द स्वरूप वाली, **तनुं-अपि**=भक्त के स्वरूप को भी, **शिवयन्तीं**=कल्याणमय बनाने वाली, **भागवतीं**=सर्वशक्तिमती माता को, **चिरं**=जन्मान्तरों के पश्चात्, **सपदि**=क्षणमात्र में, **स्वं-आत्मानं**=अपना ही स्वरूप, **उपलभन्ते**=जानते हैं।

अर्थः—भाग्यवान् पुरुष आप की स्वाभाविक दया से, उत्तम गुरु के अनु ग्रह से आप के शाक्त मार्ग में प्रवेश कर छः अध्वरूपी

अन्धकार समूह को काटने के लिये, अपार कृपावाली, परमानन्दमयी, भक्त के स्वरूप को कल्याणमय बनाने वाली भगवती को अपना ही रूप क्षणमात्र में बहुत जन्मों के पश्चात् जानते हैं।

टिप्पणी–"बहूनां जन्मनां-अन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते" भगवद्गीता
बहुत जन्मों के पश्चात् ज्ञानवान् मुझ ईश्वर को प्राप्त होता है।
"भ्रान्त्वा लब्धः मया स्वस्मिन् देहे देवो यथास्थितः।। लल्लेश्वरी
बहुत जन्मों में घूम कर मैंने उस माँ को अथवा शंकर को अपने ही शरीर रूपी मन्दिर में अपने ही रूप में पाया "शिवोहम्"

शिवस्त्वं शक्तिस्त्वं त्वमसि समया त्वं समयिनी
त्वं-आत्मा दीक्षा, त्वं-अयं-अणिमादिः-गुणगणः।
अविद्या त्वं विद्या त्वम्-असि निखिलं त्वं किम्-अपरं
पृथक्-तत्त्वं त्वत्तो भगवति! न वीक्षामहे-इमे (35)

अन्वय-शब्दार्थ

भगवति!=हे माता, **त्वं**=आप ही, **शिवः**=शिव हो, **त्वं**=आप ही, **शक्तिः**=शक्ति हो, **त्वं**=आप, **समया**=कालरूप हो, **त्वं**=आप, **समयिनी**=समय को नियंन्त्रण में रखने वाली हो, **त्वं**=आप ही, **आत्मा**=आत्मा हो, **त्वं दीक्षा**=आप ही उपदेश हो, **त्वं अणिमादि**=आप ही अष्टसिद्धियाँ हो, **गुणगणः**=तीनों गुण (सत्व-रज-तम) आप ही हो, **अविद्या**=अज्ञान, **त्वं**=आप ही, **विद्या**=ज्ञानरूप, **असि**=हो, **निखलं त्वं**=सभी कुछ आप ही हो, **किम्-अपरं तत्त्वं**=कौन सा ऐसा दूसरा तत्व है, **त्वत्तो**=आप से, **पृथक्**=भिन्न है, **न वीक्षामहे**=देखते नहीं हैं।

अर्थः–हे माता, आप ही शिव और आप ही शक्ति हो, आप ही काल रूप और आप ही काल को चलाने वाली हो, आप ही आत्मा हो आप ही उपदेश रूप हो, आप ही अणिमादि अष्टसिद्धियाँ हो,

आप (सत्व, रज, तम) तीन गुणरूप हो, आप ही, अज्ञान और ज्ञानरूप हो, सभी कुछ आप ही हो, कौन सा ऐसा दूसरा तत्त्व है जो आप से भिन्न है ऐसा हम देखते नहीं हैं।

टिप्पणी–"ईशावास्यं-इदं सर्वं" जो कुछ दीखे जगत् में सब ईश्वर से ढाँप" (ईशावास्योननिषद्)

असंख्यैः प्राचीनैः-जननि! जननैः कर्मविलयात्
गते जन्मन्यन्त-गुरुवपुषं-असाद्य गिरिशम्।
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रम-तनुर्-अपि त्वां विदितवान्
नयेयं त्वत्-पूजा सतुति-विरचनेनैव-दिवसान्।।36।।

अन्वय-शब्दार्थ

जननि!=हे जगत्माता, **प्राचीनैः**=पिछले, **असंख्यैः**=अनन्त, **जननैः**=जन्मों के द्वारा **कर्मविलयात्**=कर्मों के नाश होने से, **जन्मनि-अन्तगते**=जन्मों के अन्त होने पर, **गुरुवपुषं**=गुरु स्वरूप, **गिरिशं**=शिव को, **आसाद्य**=प्राप्त करके, **शैवी-आज्ञां**-शाम्भवी अवस्था, **अवाप्य**=प्राप्त करके, **क्रमु तनुः**=सक्रम मनुष्य शरीर धारण करता हुआ भी, **त्वां**=माता आप को, **विदितवान्**=जानता रहूँ, **त्वत् पूजास्तुतिः**=आपकी पूजा तथा स्तुति के, **विरचनेनैव**=करने में ही **दिवसान्**-इस जन्म के शेष दिन, **नयेयम्**=व्यतीत करूं।

अर्थः–हे जगत् जननी पिछले अनन्त जन्मों के द्वारा कर्मों के नाश होने से, जन्मों के अन्त होने पर गुरु स्वरूप शिव को प्राप्त करके, सक्रम मनुष्य शरीर धारण करता हुआ भी माता आप को जानता रहूँ, आप की पूजा तथा स्तुति के करने में ही इस जन्म के शेष दिन व्यतीत करूं।

टिप्पणी–क्रमतनुः=शाम्भवी अवस्था के पश्चात् भी कुछ समय तक शरीर बना ही रहता

हे, जैसे चरखे को एक धक्का ज़ोर का लगने पर भी चरखा बिना धक्के के भी कुछ देर चला ही रहता है, ऐसे ही प्रारब्ध कर्म समाप्त होने पर भी साधक का कुछ समय तक शरीर बिना प्रारब्ध के भी बना ही रहता है-जिस शरीर को इस श्लोक में "क्रमतनु:" से कहा है। शाम्भवी अवस्था श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकृपा से अभ्यास के बिना अकस्मात् भी प्राप्त होती है।

न ध्यायतो न जपतः, स्यात्-यस्यऽ-विधिपूर्व-कंम् एवं-एव शिवाभास-स्तं नुमो भक्ति-शालिनम्।

अर्थ–जिस को बिना ध्यान के, बिना जप के, विधि रहित रूप से ऐसे ही बिना अभ्यास के श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की दया से (अथवा) माँ! केवल आप की भक्ति से आप का साक्षात्कार हो, उसी भक्त को मैं प्रणाम करता हूँ।

यत्-षट्-पत्रं कमलं-उदितं, तस्य या कर्णिकाख्या
योनिस्तस्याः प्रथितं-उदरे यत् तत्-ॐकारपीठम्।
तस्मिन्-अन्तः कुचभरनतां कुण्डलीतः प्रवृतां
श्यामाकारां सकलजननीं सन्ततं भावयामि (37)

अन्वय-शब्दार्थ

यत्=जो, **षट् पत्रं कमलं**=छः पत्ते वाला कमल, **उदितं**=खिला हुआ, **तस्य**=उस कमल की, **या**=जो, **कर्णिकाख्या**=कर्णिका नाम वाली, **योनिः**=मध्य भाग है, **तस्याः**=उसके **उदरे**=मध्य में, **यत्**=जो, **तत्**=वह, **ॐकारपीठं**=ॐकार रूप पीठ, **प्रथितं**=स्थित है, **तस्मिन्**-अन्तः=उसके बीच में, **कुचभरनतां**=ज्ञान क्रिया रूप स्तनों से झुकी हुई, **कुण्डलीतः प्रवृत्तां**=सार्धत्रिवलय रूप में ठहरी हुई श्यामाकारां=श्यामवर्णवाली, **सकल जननी**=जगत् माता को, **सन्तत**=बार बार भावयामि प्रणाम करता हूँ।

अर्थः–स्वाधिष्ठान चक्र में ठहरे हुये खिले हुये, षट्=कमल का कर्णिका नाम वाला जो मध्य भाग हैं, उसके मध्य में विकसित जो ॐकार पीठ है उसके बीच में ज्ञान क्रिया रूप स्तनों से झुकी हुई कण्डलिनी रूप में ठहरी हुई श्यामकार वाली जगत् माता को बार बार प्रणाम करता हूँ।

टिप्पणी–कमल और चक्र में भेद-जब तक कुण्डलिनी सुप्त रहती है, तब तक षड्कमलों को षड् चक्र कहते हैं, कुण्डलिनी के जागने पर उनको षड कमल कहते हैं।
मूलाधार से लेकर आज्ञा चक्र तक मनुष्य शरीर में छ: चक्र है-जिनकी जानकारी पाठकों षड्चक्र चित्र से होगी। (जो मुख प्रष्ट पर है)

भुवि-पयसि कृशानौ मारुते खे शशांके
सवितरि यजमाने प्यष्टधा शक्तिर्-एका
वहति कुचभराभ्यां या विनम्रापि विश्वं
सकल जननि! सात्वं पाहि मां-इत्यवश्यम् (38)

अन्वयं-शब्दार्थ

सकल जननि=हे जगत् माता, **या**=जो, आप, **एकापि**=एक होते हुये भी, **भुवि**=पृथ्वी में, **पयसि**=जल में, **कृशानौ**=अग्नि में, **मारुते**=वायु में, **खे**=आकाश में, **शशांके**=चन्द्रमा में, **सवितारि**=सूर्य में, **यजमाने**=यज्ञ करने वाले में, **अष्टधा शक्ति**=आठ प्रकार की शक्ति रूप में, **कुचभराभ्यां**=ज्ञान क्रिया रूप स्तनों के बोझ से, **विनम्रापि**=झुकी हुई भी, **विश्व**=जगत को, **वहति**=सृष्टि=पालन तथा संहार करती हो, **सात्वं**=वही आप, **मां**=मुझे, **अवश्य**=अवश्य, **पाहि**=रक्षा करो।

अर्थ:–हे जगत् माता! आप एक होते हुये भी पृथ्वी में जल में अग्नि में, वायु में, आकाश में, चन्द्रमा में, सूर्य में, यजमान में, आठ प्रकार की शक्ति के रूप में, ज्ञान क्रिया रूप अमृत भरे स्तनों के बोझ से झुकी हुई भी जगत् की सृष्टि पालन तथा संहार करती हो। हे जगत् की माता वहीं आप मेरी अवश्य रक्षा कीजिये।

टिप्पणी–इस अन्तिम श्लोक में माता के आठ शक्तियों का संकेत है-वे आठ शक्तियाँ हैं (1) पृथ्वी में शर्वशक्ति, (2) जल में भवशक्ति, (3) अग्नि में रुद्रशक्ति, (4) वायु में उग्र शक्ति, (5) आकाश में भीम शक्ति, (6) यजमान में पशुपति शक्ति, (7) चन्द्रमा में महादेव

शक्ति (8) सूर्य में ईशान शक्ति।

इन आठ शक्तिरूप नामों के आरम्भ में "ॐ" जोड़कर अन्त में नमः जोड़ने से आठ शक्तिशाली मन्त्र बनते हैं-पञ्चस्तवी पाठ के अन्त में यह आठ मन्त्र अवश्य पढ़िये-या समयानुसार जप कीजिये।

मन्त्र

(1) ॐ शर्वाय नमः (2) ॐ भवाय नमः, (3) ॐ रुद्राय नमः, (4) ॐ उग्राय नमः, (5) ॐ भीमाय नमः, (6) ॐ पशुपतये नमः, (7) ॐ महादेवाय नमः, (8) ॐ ईशानाय नमः।।

इति सकल-जननी-स्तवः-पञ्चमः

ॐ शान्तिः शान्ति शान्तिः